]   *   *   *   [अङ्क ११

परमानन्द मिश्र

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,४५,७००

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष २०२२, नवम्बर १९६५

विषय-सूची

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति
भारतमें ४५
विदेशमें ५
(१०

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

मुरलीमें मग्न

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

सदा सर्वत्रास्ते ननु विमलमाद्यं तव पदं तथाप्येकं स्तोकं नहि भवतरोः पत्रमभिनत् ।
क्षणं जिह्वाग्रस्तं तव तु भगवन्नाम निखिलं समूलं संसारं कषति कतरत् सेव्यमनयोः ॥

वर्ष ३९ } गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष २०२२, नवम्बर १९६५ { संख्या ११
पूर्ण संख्या ४६८

मुरलीमें मग्न

छैल-छबीले लाड़िले वर . कालिंदी कूल ।
अरुनोत्पल आसन सुखद सोभित पीत दुकूल ॥
अधरनि धर मुरली मधुर मोहन मधुमय तान ।
लगे अलापन, मगन है, सहज भुलावन भान ॥
गैया नितकी सहचरी ठाढ़ी दहिनी ओर ।
नयन मुँदि रहे रसभरी मुरली-तान-बिभोर ॥

कल्याण

याद रक्खो—जो सदा सबका भला चाहते और करते हैं, कभी किसीकी मन, तन और वचनसे हिंसा नहीं करते, इन्द्रियोंको तथा मनको वशमें रखते हैं, किसीसे द्वेष या वैर नहीं रखते,—वे सदा सुखी रहते हैं और जीवनकालमें ही स्वर्गमें निवास करते हैं।

याद रक्खो—जो मनसे, वचनसे और क्रियासे सबका कल्याण करते और सदा सबको अनुकूलता प्रदान करते रहते हैं, जो किसी भी विपत्ति और प्रतिकूलतामें धैर्य तथा धर्मको नहीं छोड़ते, जो दूसरेका स्वत्व तनिक भी नहीं लेना चाहते—वे सदा सुखी रहते हैं और जीवनकालमें ही स्वर्गमें निवास करते हैं।

याद रक्खो—जो मधुरभाषी हैं, कभी कटु नहीं बोलते, किसीकी कभी निन्दा-चुगली नहीं करते, सबको सम्मान देते हैं; पर स्वयं सम्मान नहीं चाहते, दूसरेके अधिकारकी रक्षा करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं और जीवनकालमें ही स्वर्गमें निवास करते हैं।

याद रक्खो—जो दीनोंपर सदा दया करते हैं, बन्धुजनोंकी बदला न चाहकर सेवा करते हैं, सेवा करके अहसान नहीं जताते, जो अहंकारसे रहित हैं, सदा कोमल स्वभाव तथा विनयशील हैं, वे सदा सुखी रहते हैं और जीवनकालमें ही स्वर्गमें निवास करते हैं।

याद रक्खो—जो दूसरोंके दुःख-कष्टको अपने दुःखके समान समझते और यथासाध्य उनके दुःख-निवारणमें तत्पर रहते हैं, अपने सुखका दान करके दूसरोंको सुखी बनाना चाहते हैं, अपना त्याग करके दूसरोंका हित करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं और जीवनकालमें ही स्वर्गमें निवास करते हैं।

याद रक्खो—जो क्रोधपर विजय पानेवाले हैं, मद तथा अभिमानसे रहित हैं, ममताके त्यागी हैं, जिनमें लोभ तथा मत्सरताका अभाव है, जो शान्तप्रकृति हैं, वे सदा सुखी रहते हैं और जीवनकालमें ही स्वर्गमें निवास करते हैं।

याद रक्खो—जो उदार हैं, दूसरोंके दोषोंको न देखकर गुणोंको देखते हैं, गुरुजनोंका—बड़े-बूढ़ोंका पूजन-सम्मान करते हैं, विद्वानों तथा ब्राह्मणोंका आदर करते हैं, यथाशक्ति सात्त्विक दान करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं और जीवनकालमें ही स्वर्गमें निवास करते हैं।

याद रक्खो—जो प्रत्येक वस्तुको भगवान्‌की मानते तथा भगवान्‌की सेवामें लगाते रहते हैं, प्रत्येक कार्यके द्वारा भगवान्‌की सेवा करते हैं, सबमें भगवान्‌को देखकर सबका हितसाधन करते हैं, भगवान्‌के प्रत्येक विधानको मङ्गलमय समझते हैं, ईश्वरमें सदा विश्वास करते हैं—वे सदा सुखी रहते हैं और जीवनकालमें ही स्वर्गमें निवास करते हैं।

याद रक्खो—जो प्रत्येक परिस्थितिमें विचारपूर्वक अनुकूलताका अनुभव करते हैं, प्रत्येक परिस्थितिमें भगवान्‌की कृपाका अनुभव करते हैं और प्रत्येक परिस्थितिमें भगवान्‌का स्मरण करते रहते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं और जीवनकालमें ही स्वर्गमें निवास करते हैं।

याद रक्खो—जो तन-मन-वचनसे सबके प्रतिकूल आचरण करते तथा सबका अहित करते हैं, जो हिंसा-परायण, क्रूरभाषी, इन्द्रियोंके गुलाम, अशुभ आचार करनेवाले, भगवान्‌को न माननेवाले, अभिमान तथा राग-द्वेषसे पूर्ण हृदयवाले तथा ममता-मद-मोहमें चूर हुए असत्य आचरण करते हैं, वे सदा दुखी रहते हैं [और] जीवनकालमें ही नरक-यन्त्रणा भोगते हैं।

'शिव'

भारतीय साम्यवाद

(लेखक—स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

यदि हम कहें कि भारतीय सभ्यता साम्यवादके ताना-बानासे गुँथी हुई है तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। परंतु इतना ध्यान रखना है कि भारतीय साम्यवाद और कार्ल मार्क्सके यूरोपीय साम्यवादमें जमीन-आसमानका अन्तर है। यूरोपीय साम्यवाद भौतिक स्तरके ऊपर स्थित है अर्थात् प्रत्येक मनुष्यको शरीरके भोग तथा भोगसामग्री एक समान मिलें, सबको समान रूपसे भोग प्राप्त हो। भौतिक स्तर प्रकृतिका क्षेत्र है, अतएव इसमें विषमता अनिवार्य है। किन्हीं दो आदमियोंके प्रारब्ध समान नहीं होते, किन्हीं दो मनुष्योंके चित्तके संस्कार एक-सरीखे नहीं होते तथा किन्हीं दो मनुष्योंका स्वभाव और रुचि भी एक-सी नहीं होती। ऐसी दशामें प्रत्येकको समान भोग-सामग्री दिये जानेपर भी वे उन भोगोंको समान रूपसे भोग नहीं सकते। मनुष्य परिश्रम करनेमें स्वतन्त्र है, परंतु उसका फल कब, कितना, कहाँ और कैसे मिलेगा, यह दैवाधीन है। बल्कि भोग-सामग्रीका उपभोग भी मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार करता है, अतएव उसमें भी विषमता रहेगी ही। रशियन विचारक काउण्ट लियो टालस्टायने इस दिशामें बहुत प्रयोग किये थे; परंतु उन्हें कोई सफलता न मिली। प्रारब्धकी भिन्नता, स्वभावकी भिन्नता तथा संस्कारकी भिन्नताको दूर करनेके प्रयत्नमें यह साम्यवाद द्वेषमूलक हो गया है। जिसके पास जो कुछ था, वह सब राज्यने हथिया लिया और मनुष्यको यन्त्रके समान बनाकर शासन-सत्ता यन्त्रकी कलके समान उसको घुमाने तथा नचाने लगी। इस प्रकार व्यक्ति-स्वातन्त्र्य-जैसी कोई वस्तु उन देशोंमें कुछ भी न रही। गड़रियेकी सारी भेड़ जैसे गड़रियेकी एक आवाजपर खड़ी हो जाती है, दूसरी आवाजपर चलने लगती है और तीसरी आवाजसे दौड़ने लगती है, इसी प्रकार उन देशोंकी प्रजा शासनसत्ताके इशारेपर अपना जीवन बिताती है। यदि व्यक्ति-स्वातन्त्र्यको रहने दें तो प्रारब्ध आदिका प्रभाव पड़े बिना न रहे। इसके लिये पहले तो उसीको मिटा दिया गया और सारी सत्ता शासनाधिकारको सौंप दी गयी, इत्यादि। साम्यवादी देशोंमें धर्म या ईश्वरके लिये कोई स्थान नहीं होता। उनके लिये तो शासन-सत्ताकी आज्ञा ही धर्म है और शासन-सत्ताकी सेवा ही ईश्वर-सेवा है। वहाँ बालक जब पैदा होता है तभीसे उसे राज्यको सौंप दिया जाता है और उसको यह खबर तक नहीं होती कि माता-पिताका स्नेह क्या वस्तु है। इस प्रकार भावी प्रजा यन्त्रके समान बड़ी होती है और यन्त्रके समान ही जीवनयापन करती है। हमने इस साम्यवाद-का अध्ययन नहीं किया है, इसलिये जो कुछ सुना है उसके आधारपर जो समझमें आया है उसीकी रूपरेखा मात्र दे दी है। अस्तु,

हमने इस निबन्धके प्रारम्भमें कहा है कि भारतीय सभ्यता तो साम्यवादके ताने-बानेसे ही गुँथी है, अतएव अब इस विषयमें विचार करना है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता अध्याय १४। ४ में कहते हैं—

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! चौरासी लाख योनियोंमें जो-जो प्राणी उत्पन्न होते हैं, उनकी माता विशाल महत्तत्त्व है और मैं चेतनारूप बीजारोपण करनेवाला परम पिता हूँ। इस प्रकार भूतमात्र एक ही माता-पिताकी संतान हैं, अतएव परस्पर एक दूसरेकी भलाई

करनी चाहिये। किसीको दुःख तो देना ही नहीं चाहिये, यह स्पष्ट है। इसीका अनुवाद करके कवि दलपतरामने ग्रामीण पाठशालाकी पहली पुस्तकके अभ्यासक्रममें यह कविता दी है, जिसका हिंदी रूप यह है—

परमेश्वरकी है प्रजा, सारा यह संसार।
एक कुटुम्बी हम सभी, एक पिता परिवार॥

आगे चलकर भगवान् मोक्षमार्गके पथिकके लिये विधिमुखसे कहते हैं कि—'सर्वभूतहिते रताः'—अर्थात् जो साधक भूतमात्रका हितचिन्तन करता है और यथाशक्ति हितसाधन भी करता है वह मोक्षका अधिकारी बनता है। अन्य स्थलमें निषेधमुखसे कहते हैं—'निर्वैरः सर्वभूतेषु'—अर्थात् जो साधक किसी भी प्राणीसे वैर नहीं करता तथा किसीको पीड़ा नहीं पहुँचाता, वह भी मोक्षगामी बनता है।

भगवान् शंकराचार्य षट्पदीमें कहते हैं—

'भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः।'

'हे भगवन्! सब भूतोंके प्रति मेरा प्रेमसे भरी दयाका भाव बना रहे, ऐसा करो तथा सब भूतोंमें मैं आपको देखकर उनकी सेवा करता रहूँ। इससे मैं मोक्षका अधिकारी बनूँगा और आपसे कहूँगा कि मुझे संसारसागरसे तार दीजिये—'तारय संसारसागरतः'।

सभी योनियोंमें प्राणीको अपना जीवन समान ही प्रिय होता है अर्थात् मरणका भय सबको स्वाभाविक होता है। सभी प्राणियोंको प्राण धारण करनेके लिये, आहारकी एक-सी आवश्यकता होती है तथा थकनेपर आराम करनेकी एक-सी ही इच्छा होती है। यह समझमें आ जाय तो कोई भी मनुष्य दूसरे प्राणीको पीड़ा न पहुँचाये, बल्कि अपनेसे जितना हो सके उसको आहार देने तथा आराम पहुँचानेमें सहायता करे। ईश्वरकी पूजाका प्रकार बतलाते हुए वसिष्ठ मुनि भगवान् श्रीरामचन्द्रसे कहते हैं—

येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिनः।
संतोषं जनयेद् राम तदेवेश्वरपूजनम्॥

'जिस किसी प्रकारसे जिस किसी भी प्राणीको सुख-संतोष देना ही हे राम! ईश्वरका पूजन है।'

अब यह देखना है कि 'सर्वभूतहिते रताः' की स्थितिमें मनुष्य कैसे पहुँच सकता है और इसके लिये भारतीय साम्यवादके स्वरूपपर विचार करना है।

इस भारतवर्षमें साम्यवाद शब्दका प्रयोग नहीं होता है, परंतु 'साम्ययोग' अथवा 'समत्वयोग' शब्दका प्रयोग होता है और यह आर्यसंस्कृतिका मूलभूत सिद्धान्त है। इस साम्ययोगकी प्राप्तिके लिये हमको क्या-क्या करना चाहिये, इसीपर यहाँ विचार करना है। इसकी पहली सीढ़ी है—'परार्थपरता' अर्थात् अपने हितका विचार न करके दूसरोंके हितका विचार करना और अपना हित-साधन करते समय यह ध्यान रखना कि इसमें दूसरे किसीका अहित तो नहीं हो रहा है। यही एक सद्गुण यदि मनुष्यमें आ जाय तो आज जो खान-पानके पदार्थोंतकमें मिलावट चल रही है, वह बंद हो जाय। मनुष्य इतना 'स्वार्थपरता'के वश हो गया है कि अपने थोड़ेसे स्वार्थके लिये सारी प्रजाके स्वास्थ्यको जोखिममें डालता है। 'परार्थपरता' दैवी गुण है और 'स्वार्थपरता' पशुभाव है।

दूसरी बात है—'संतोष धारण करना'। योग-दर्शनमें कहा है—'संतोषादनुत्तमसुखलाभः।' संतोषसे निरतिशय सुखकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य यथाप्राप्तमें संतोष मानता है, वह दूसरेका अहित करके अपना स्वार्थ कभी सिद्ध नहीं कर सकता। इसीलिये नीतिकार कहते हैं—

अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलमन्दिरम्।
अक्लेशयित्वा चात्मानं यत्स्वल्पमपि तद्बहु॥

'दूसरे किसीको संताप दिये बिना, दूसरे किसीका अहित किये बिना, खल पुरुषके घर याचना किये

विना तथा अपने आपको अधिक श्रम दिये विना जो थोड़ा भी मिले तो उसको बहुत समझे।' इस सूत्रके अवलम्बनसे मनुष्य, मनुष्य बनता है और पशुभावमें नहीं उतरता। साम्ययोगमें स्थिर होनेके लिये भगवान् व्यासजी निषेधात्मक रीतिसे इस प्रकार आदेश देते हैं—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

'हे भाइयो! तुमसे धर्मका सार-तत्त्व कहता हूँ, सुनो और सुनकर भूलो मत, अपने जीवनमें धारण कर लो। जो व्यवहार तुम्हें अच्छा न लगता हो, वैसा व्यवहार तुम दूसरेके साथ न करो।' तुम्हारी कोई निन्दा करे और तुम्हें अच्छा न लगे तो तुम किसीकी निन्दा न करो। तुम्हें कोई धोखा देता है और उससे तुम्हें दुःख होता है तो तुम किसीको धोखा मत दो, इत्यादि। इस प्रकार आत्मनिरीक्षण करके यदि मनुष्य जगत्में व्यवहार करे तो कोई मनुष्य दुखी न रहे। भारतीय साम्ययोगका स्वरूप समझाते हुए भागवतकार कहते हैं—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥
मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत्॥

अर्थात् 'जितनेसे अपना निर्वाह होता हो, उतना मनुष्य अपने पास रक्खे और उतनेहीके ऊपर उसका स्वत्व है। जो मनुष्य अपनी आवश्यकतासे अधिक संग्रह करता है तथा उसे अपना मानता है वह चोर है और इस कारण वह दण्डका पात्र है।' आगे चलकर कहते हैं कि 'हरिण, ऊँट, गधा, बंदर, चूहा, रेंगकर सरकनेवाले जीव, पक्षी तथा मक्खी-जैसे क्षुद्र जीवोंको अपने पुत्रके समान समझे; क्योंकि ईश्वरकी दृष्टिमें अपनेमें और उन प्राणियोंमें कोई अन्तर नहीं है।' आहार, निद्रा और मृत्युका भय आदि सबको समान होते हैं। मनुष्यमें यदि कोई विशेषता है तो इतनी ही है कि उसको ईश्वरने विवेक-बुद्धि प्रदान की है, इसलिये उसका उपयोग करके पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि किसी भी प्राणीको आत्मीयताके नाते दुःख न दे, जहाँतक हो सके सबकी सेवा करे।

हमारे शास्त्रोंमें जो 'पञ्च महायज्ञ'का विधान है, वह भी इसी समत्वयोगकी दृष्टिका प्रसार करनेके लिये है। प्रत्येक गृहस्थका कर्तव्य है कि वह सारे प्राणियोंको तृप्त करके भोजन करे। जो मनुष्य अकेला अपना ही पेट भरता है, वह तो पाप ही खाता है।

यह 'साम्ययोग' श्रीभगवान्ने पहले सूर्यको कहा था, सूर्यने मनुको और मनुने इक्ष्वाकुको कहा। इस प्रकार परम्परासे चलता हुआ यह साम्ययोग द्वापर-युगमें आकर लुप्त हो गया था। इसको फिर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा और इसकी पुनः प्रतिष्ठा की। इस बातको हुए आज बहुत दीर्घकाल बीत गया, इस कारण इस साम्ययोगको लोग फिर भूल गये हैं और इसी कारण सारे विश्वमें आज हाहाकार मचा हुआ है। इससे त्राण पानेके लिये इस भारतीय साम्ययोगकी पुनः स्थापना करनेके लिये प्रत्येक भाई-बहनोंको निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिये—

सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

'इस विश्वमें सब प्राणी सुखसे रहें, सब नीरोग रहें, सब कल्याणमय वातावरणमें रहें। दुःख तो किसीको भी न हो।'

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

एक महात्माका प्रसाद

[प्रीतिकी दृष्टि, चित्तकी शुद्धि और जीवनकी पूर्णता]

(संकलयिता—'माधव')

व्यक्ति एक है। दृश्य भी एक है। पर दृष्टियाँ अनेक हैं। व्यक्ति जिस दृष्टिसे दृश्यको देखता है, उसके अनुसार उसपर प्रभाव पड़ता है। इन्द्रिय-दृष्टि सबसे स्थूल दृष्टि है। इसके प्रभावकी आसक्तिसे चित्त अशुद्ध होता है। इन्द्रियदृष्टिसे दृश्यमें सत्यता, सुन्दरता तथा अनेकताका भास होता है। अथवा यों कहिये कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—विषयोंमें रुचि उत्पन्न होती है जिससे इन्द्रिय विषयोंके अधीन, मन इन्द्रियोंके अधीन और बुद्धि मनके अधीन हो जाती है। बुद्धि मनके, मन इन्द्रियोंके और इन्द्रियाँ विषयोंके अधीन होते ही वस्तुओंमें जीवन-बुद्धि हो जाती है। जिसके होते ही प्राणी सुख-लोलुपता, जडता, पराधीनता, शक्तिहीनता आदि दोषोंमें आवद्ध हो जाता है। उसका परिणाम यह है कि वह वेचारा संकल्प—पूर्ति-अपूर्तिके द्वन्द्वमें आवद्ध होकर सुखी-दुखी होने लगता है। ऐसा कोई संकल्प-पूर्तिका सुख है ही नहीं, जिसके आदि और अन्तमें दुःखका दर्शन न हो। इतना ही नहीं, सुख-कालमें भी सुखमें स्थिरता नहीं रहती। जिस प्रकार तीव्र भूख लगनेपर प्रथम ग्रासमें जितना सुख भासता है, उतना दूसरेमें नहीं। अर्थात् प्रत्येक ग्रासमें क्रमशः सुखकी क्षति होती जाती है और अन्तिम ग्रासमें सुख नहीं रहता। केवल भोगकी क्रिया-जनित सुखद स्मृति ही रह जाती है, जो नवीन संकल्पोंको उत्पन्न करती है और प्राणी पुनः उसी स्थितिमें आ जाता है, जिसमें संकल्प-पूर्तिके सुखसे पूर्व था अर्थात् संकल्प-उत्पत्तिका दुःख ज्यों-का-त्यों भासने लगता है। उसी प्रकार प्रत्येक भोग-प्रवृत्तिका परिणाम होता है।

भोग-प्रवृत्तिके इस दुष्परिणामकी अनुभूतिसे व्यक्तिको इन्द्रियदृष्टिपर संदेह होता है। इसके होते ही बुद्धि-दृष्टिका आदर होने लगता है। ज्यों-ज्यों बुद्धिदृष्टिका आदर बढ़ने लगता है, त्यों-ही-त्यों इन्द्रियदृष्टिका प्रभाव मिटने लगता है। सर्वांशमें इन्द्रियदृष्टिका प्रभाव मिट जानेपर अन्य वस्तुओंकी तो कौन कहे, जिस शरीरमें सत्यता, सुन्दरता, सुखरूपता प्रतीत होती थी, वह शरीर मल-मूत्रकी थैली तथा अनेक व्याधियोंका घर प्रमाणित होता है। बुद्धिदृष्टिके स्थायी होते ही शरीर आदि वस्तुओंसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेकी रुचि उत्पन्न हो जाती है; क्योंकि प्रत्येक वस्तुमें सतत परिवर्तन तथा क्षणभङ्गुरताका दर्शन स्पष्ट होने लगता है। अथवा यों कहो कि कोई भी वस्तु इन्द्रियदृष्टिसे जैसी प्रतीत होती थी, अर्थात् उसका एक अपना अस्तित्व माळूम होता था, वह नहीं माळूम होता, अपितु वह वस्तु अनेक वस्तुओंका समूह प्रतीत होती है। इतना ही नहीं, बुद्धिदृष्टिसे अनेकतामें एकता और व्यक्त अव्यक्त प्रतीत होता है। इस कारण वस्तुओंकी आसक्ति मिट जाती है और वास्तविकताकी जिज्ञासा जाग्रत् होती है, जो सभी कामनाओंको खाकर स्वतः पूरी हो जाती है। बुद्धिदृष्टिसे राग वैराग्यमें और भोग योगमें बदल जाता है।

फिर विवेकदृष्टि उदय होती है, जो कामका अन्त कर प्राणीको चिर शान्ति तथा स्वाधीनता एवं चिन्मयताकी ओर उन्मुख कर देती है, जिसके होते ही अन्तर्दृष्टि जाग्रत् होती है जो भेद तथा दूरीका अन्त कर उसे अपनेमें ही संतुष्ट कर देती है। अन्तर्दृष्टिकी पूर्णतामें प्रीतिकी दृष्टिका उदय होना स्वाभाविक है। प्रीतिकी दृष्टि समस्त दृष्टियोंमें एकताका बोध कराती है; क्योंकि प्रीति सभीसे

अभिन्नता प्रदान करनेमें समर्थ है। प्रीति स्वभावसे ही सर्वत्र सर्वदा अपने प्रेमास्पदको ही पाती है। कारण कि प्रीतिने प्रीतमसे भिन्न किसी अन्यको कभी देखा ही नहीं। प्रीतिकी दृष्टि रसरूप है। प्रीतिकी दृष्टि रसरूप होनेसे प्रेमास्पदमें नित-नूतनताका बोध कराती है। प्रीति पूर्णरूपसे प्रीतमको देख ही नहीं पाती; क्योंकि प्रीति और प्रीतम—दोनों ही अनन्त दिव्य तथा चिन्मय हैं। प्रीतिके साम्राज्यमें जडताका लेश नहीं है। प्रीति मिलनमें वियोग और वियोगमें भी मिलनका रस प्रदान करती है। अर्थात् प्रीतिकी दृष्टिसे मिलन और वियोग दोनों ही रसरूप हैं। प्रीति स्वरूपसे ही रस-रूपा है। उसमें अस्वाभाविकता लेशमात्र भी नहीं है। इसी कारण वह अखण्ड तथा अनन्त है। प्रीति एकमें दो और दोमें एकका दर्शन कराती है अथवा यों कहो कि वह एक और दोकी गणनासे विलक्षण है। उसमें भेद और भिन्नताकी तो गन्ध ही नहीं है। प्रीति प्रीतमका ही स्वभाव है और प्रीतिमें ही प्रीतमका निवास है। चिन्मय साम्राज्यमें प्रीति और प्रीतमका नित्य विहार है अथवा यों कहो कि प्रेमके साम्राज्यमें प्रेमका आदान-प्रदान है।

सबका द्रष्टा एक है। समस्त दृष्टियाँ उसीके प्रकाशसे प्रकाशित हैं और उसीकी सत्तासे सत्ता पाती हैं। किसी भी दृष्टिकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। अथवा यों कहो कि सब दृष्टियाँ सबके द्रष्टामें ही विलीन होकर उससे अभिन्न हो जाती हैं और अन्तमें प्रीतिकी दृष्टि ही सबके द्रष्टाको रस प्रदान कर उसे आह्लादित करती है। प्रीतिकी दृष्टिमें ही सभी दृष्टियोंका समावेश है। वही दृष्टि स्नेह, प्रेम तथा आत्मरतिके रूपमें अभिव्यक्त होती है। प्रीति ऐसी निर्मल धारा है कि वह किसीमें आबद्ध नहीं रहती, अपितु सभीको पार करती हुई अनन्तमें ही समाहित हो जाती है और सभीको रस प्रदान करती रहती है। प्रीतिकी धारा अविच्छिन्न रूपसे प्रवाहित होती रहती है। वह आदि और अन्तसे रहित, देश-काल-वस्तु आदिकी सीमाका अतिक्रमण करती हुई अनेक रूपोंमें अपने प्रेमास्पदको ही पाकर कृतकृत्य होती है। अतः इन्द्रिय-बुद्धि आदि सभी दृष्टियोंका प्रीतिकी दृष्टिमें विलीन करना अनिवार्य है; क्योंकि जब इन्द्रिय-दृष्टि बुद्धि-दृष्टिमें और बुद्धि-दृष्टि विवेक-दृष्टिमें विलीन हो जाती है, तब चित्त शुद्ध हो जाता है, जिसके होनेपर तो अन्तर्दृष्टि तथा प्रीतिकी दृष्टि उदय होती है। इस प्रकार प्रीतिकी दृष्टिसे स्वतः स्फूर्त चित्तकी शुद्धिमें ही जीवनकी पूर्णता निहित है।

रामको भज

देखकर अन्याय असुरोंका, सुरोंका ताप।
सज्जनोंका कष्ट भारी, दुर्जनोंका पाप॥
भार हरनेको धराका, मेटने संताप।
राम बनकर आ गया जो ब्रह्म अपने आप॥
लोकको जिसने बनाया, सूर्यमें आलोक।
दे सुधाकरको सुधा वसुधा रची बहु-ओक॥
चर-अचर सबमें रमा जो है रमाका नाथ।
मूढ़! ऐसे रामको भज जोड़ दोनों हाथ॥

—सूर्यबलीसिंह 'दशनाम' एम० ए० (हिंदी-संस्कृत), साहित्यरत्न

युग-समस्यामें महाप्रभु

(लेखक—डा० महानामव्रत ब्रह्मचारी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

आजसे प्राय: पाँच सौ वर्ष पहले, हमारे ही बीचमें अवतरित हुए थे प्रेमघनविग्रह, एक युग-पुरुष! बङ्गभूमिकी गोदमें, भगवती भागीरथीके तटपर, कीर्तनोन्मत्त नदियामें, पूर्णिमाकी समुज्ज्वल संध्याके समय, श्रीशची-जगन्नाथके आनन्द-मुखरित आँगनमें।

उनका रूप था अनवद्य, गुण थे अनुपम और माधुर्य था अनिर्वचनीय। उस युगमें ऐसा कोई मानव न था, जो उनके प्रति आकृष्ट न हुआ हो। समाजकी सारी आत्मिक दीनताको उन्होंने दूर कर दिया था। नाना प्रकारकी समस्याओंकी कठिनाई उन्होंने मिटा दी थी। वैषम्य-विषमता-क्लिष्ट समाजके अगणित नर-नारियोंको उन्होंने एक महा-साम्य नीतिकी भूमिकामें उन्नीत किया था। पुकार-पुकारकर, शान्तिका मार्ग दिखलाकर अशान्त जीवोंको उन्होंने धन्य कर दिया था।

आज पुन: मानव-समाजमें जो मर्मान्तक युग-समस्या उठ खड़ी हुई है, उसका समाधान हम खोजेंगे। इसके लिये हम उसी महायुग-देवता श्रीकृष्णचैतन्यके पादपद्मकी ओर दृष्टिपात करेंगे। सबसे पहले हम यह देखेंगे कि वर्तमान युग क्या है और इसकी समस्या क्या है? तत्पश्चात् वेदनाके घोर अन्धकारमें महाप्रभु श्रीगौरचन्द्रकी करुणा-चन्द्रिका हमारे गन्तव्य पथका श्रेष्ठ और प्रेष्ठ पाथेय बनेगी।

वर्तमान युगसे मेरा अभिप्राय वैज्ञानिक युग है। इस युगमें जड-विज्ञानने पर्याप्त उन्नति की है। नाना प्रकारकी गवेषणासे नये-नये तथ्य आविष्कृत हुए हैं। व्यावहारिक जीवनमें इन तथ्योंने विभिन्न प्रकारके यन्त्रादिका रूप धारण किया है। भौतिक सुखकी प्राप्तिके उद्देश्यसे उन यन्त्रोंका प्रचुर व्यवहार हो रहा है। फलत: समाजमें अपूर्व परिवर्तन हो गया है।

विज्ञानके आविष्कृत तथ्योंका जीवनके अनेक क्षेत्रोंमें प्रयोग हो रहा है। उनमें दो क्षेत्र विशेषरूपसे दृष्टिको आकर्षित करते हैं। मनुष्यका यातायात (Transportation) तथा संवादका आदान-प्रदान (Communication)—इन दो दिशाओंके परिवर्तन चमत्कारिक हैं। पहले युगके मनुष्य घंटेमें चार मीलसे अधिक नहीं चल सकते थे, आज वायुयानसे हजारों मीलतक जा सकते हैं। पहलेके मनुष्य प्राणपणसे जोर देकर भी तीन सौ हाथसे अधिक दूर अपनी आवाज नहीं सुना सकते थे। आज रेडियो यन्त्रकी सहायतासे हजारों मील दूरका संगीत घर बैठे सुनते हैं। विज्ञानके प्रसादसे दूरका मनुष्य निकट हो गया है। दूर-दूरकी घटनाएँ नर-नारीके दैनिक जीवनके ऊपर प्रभाव डाल रही हैं। पृथ्वी आयतनमें मानो छोटी हो गयी है। दूर देशवासी मानो पड़ोसीके समान निकट हो गये हैं। आधुनिक जड-विज्ञानका यह एक आश्चर्यजनक दान है। वैज्ञानिक युगसे हमारा अभिप्राय यहाँ इसी युगसे है।

परंतु इस महान् परिवर्तनके साथ-साथ विज्ञानने एक अद्भुत समस्याकी सृष्टि कर दी है। विज्ञानने दूरको निकट ला दिया है, यह जिस प्रकार सत्य है, इससे भी अधिक कटु सत्य यह है कि इसी विज्ञानने हमारे निकटतमको बहुत दूर कर दिया है। एक ही विज्ञानके प्रसारणसे दो विभिन्न विपरीत फल फले हैं, यह आश्चर्यका विषय है। इस युगमें मनुष्य पड़ोसीको नहीं पहचानता। आत्मीय-स्वजन, बन्धु-बान्धव, यहाँतक कि वह माता-पिता तककी खबर नहीं रखता। मनुष्यके साथ मनुष्यके बात-व्यवहारमें बहुत अंशतक कृत्रिमताका आवरण रहता है। क्या व्यक्तियोंमें, क्या जातियोंमें सर्वत्र एकका अन्त:करण दूसरेके

सामने कपटके आवरणसे आवृत होता है। अकपट भावका आदान-प्रदान एक अतीत कालकी कहानी बन गया है। सब कामोंमें यन्त्रकी मध्यस्थतासे मनुष्य यन्त्र-रूपमें परिणत हो गया है। कहीं यन्त्र-यन्त्रका संघर्ष बढ़कर बारूदका घर उड़ न जाय, इस भयसे सब भयभीत, संत्रस्त और शङ्कित होकर जीवन-यापन कर रहे हैं।

यन्त्र-सभ्यताने जन-संघर्षको बढ़ाया है। मनुष्य मनुष्यके शरीरको ढकेलते हुए चल रहा है। मनुष्यके दबावसे मनुष्य पिसकर मरा जा रहा है। चारों ओर जन-समुद्र फैला हुआ है तथा इसके भीतर प्रत्येक मनुष्य मानो असहाय और एकाकी है, अपने भारसे आप कातर हो रहा है। जिस विज्ञानने दूरको निकट ला दिया है, उसीने अपनेको पराया बना दिया है। जन-सम्पर्क बढ़ गया है, किंतु लोक-संग्रहका कार्य मानो एकबारगी सदाके लिये विदा हो गया है। लोगोंके शरीरोंका स्पर्श हो रहा है, किंतु प्राण प्राणसे स्पर्श नहीं करते। निरन्तर धक्का-धक्की चल रही है, परंतु एक बार भी लोग गले-गले नहीं मिलते। मनुष्य हाथ-पैर, आँख-कानको बढ़ानेके लिये बुद्धि और यन्त्रको आयत्त कर रहा है, परंतु वह दीन-सङ्कुचित आत्माको विशाल-रूपमें देखनेकी साधना भूल गया है।

इस युगमें मनुष्यकी दैहिक क्षुधा बढ़ गयी है, परंतु आत्मिक क्षुधा मर गयी है। भोग-विलासकी सामग्री बढ़कर राशि-राशि, सहस्रों-सहस्रों दूकानोंकी शोभावृद्धि कर रही है, परंतु आत्माके महान् गुणसमूह मृतवत् होकर मानवीय सभ्यताको मरुभूमिमें परिणत कर रहे हैं। यही वर्तमान युगकी समस्या है, यही वर्तमान युगका सर्वापेक्षा महान् प्रश्न है। यह विराट् मानवीय आवरण कैसे दूर होगा? आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थको लेकर मनुष्य मनुष्यके अति निकट है। परंतु धार्मिक और आध्यात्मिक स्वार्थको भूलकर वह एक दूसरेसे दूर है, अतिदूर है। देहसे समीप है और प्राणसे दूर है। मनुष्य मनुष्यका संघर्ष निष्प्राण यन्त्रके संघर्षके समान हो उठा है। इस अद्भुत असामञ्जस्यसे ही समाजमें सब प्रकारकी अशान्ति उत्पन्न हुई है। इस असामञ्जस्यका समाधान कैसे हो?—यही इस युगकी मौलिक जिज्ञासा है। ज्ञात या अज्ञात रूपसे मनुष्य इसी जिज्ञासाका उत्तर खोज रहा है। सहस्रों सभा-समितियाँ दिन-प्रतिदिन स्थापित और विसर्जित हो रही हैं, परंतु मूल प्रश्नका उत्तर नहीं मिल रहा है। हम आजसे पाँच सौ वर्ष पीछे चलकर इस जिज्ञासाके उत्तरका अनुसंधान करेंगे।

मुस्लिम शासनका अन्तिम काल था। देशमें राजनीतिक उथल-पुथल थी, परंतु धन-ऐश्वर्यकी कमी न थी। शिल्प, कला, सङ्गीत, साहित्य, शास्त्रचर्चाकी प्रचुरता थी। नवद्वीप शास्त्रचर्चाका केन्द्र था। वहाँ सैकड़ों पाठशालाएँ, हजारों विद्यार्थी नाना देशोंसे आकर शास्त्रार्थमें न्यायशास्त्रमें बालकी खाल निकालते थे। नव्य न्यायके शुष्क तर्कसे गङ्गातट मुखरित हो रहा था, परंतु यह सब कुछ होते हुए भी मनुष्यत्वका अभाव था, मनुष्य-मनुष्यमें मेल न था। पण्डितलोग 'व्याप्ति-लक्षण' पर शास्त्रार्थ करना जानते थे, किंतु दूसरोंके प्राणोंकी वेदनाको अपने जीवनके 'एकाधिकरण्य' में अनुभव नहीं कर सकते थे। मुँह खोलकर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' मन्त्र उच्चारण करते थे, परंतु किसीके स्पर्शसे अपवित्र न हो जायँ—इस भयसे शङ्कित होकर मार्गपर चलते थे। शास्त्रार्थमें ब्रह्म 'एकरस' था, परंतु व्यवहारमें समाजको लाखों प्रकारसे बाँट रक्खा था।

आज समाजकी जो अवस्था भौतिक विज्ञानकी गवेषणाने कर दी है, उस समय यही अवस्था शुष्क ज्ञानकी व्यर्थ शास्त्रचर्चाने कर दी थी। जीवन रसहीन

था, पर सभामें रस-चर्चा होती थी। शास्त्रमें वैभव था, परंतु हृदयमें वेदना नहीं थी। ग्रन्थोंमें भाष्यका अनुभाष्य था, किंतु चित्तमें मानवीय औदार्य न था। आज जैसे यान्त्रिक-प्राचुर्यसे हृदय दारिद्र्यसे भरपूर हो गया है, उन दिनों पाण्डित्यके प्राचुर्यसे आत्मिक दैन्य विराजमान हो रहा था। जातिकी दुर्दशा देखकर मिथिलाके व्यथित कवि विद्यापतिने व्यथाभरी लेखनीसे लिखा था—

> कत विदग्ध जन, रस अनुगमन
> अनुभव काहुक ना पेख।
> विद्यापति कह, प्राण जुड़ाइते
> लाखे ना मिलल एक॥

देशमें पण्डितोंका मेला लगा है, किंतु हाय! हृदयको शीतल करनेवाले एक सुहृद्-जनके लिये जाति मानो छटपटा रही है। सब लोगोंके प्राण व्याकुल होकर रो रहे थे एक व्यथित बन्धुके लिये। सारे समाजकी व्यथा अपने मर्मस्थलमें अनुभव करके श्रीहट्टके कमलाक्ष ठाकुर नामक एक महापुरुष हृदय खोलकर हृदयके देवताको पुकारते थे। वे रो-रोकर कहते थे, 'आओ प्रभु, मरुमय समाजमें रस-सिञ्चन करो।' उनके करुण आह्वानसे हृदय-देवता सचमुच ही धूलमें अवतरित हुए थे। वे धूलके देवता घनीभूत प्रेमवस्तुको मानव-मूर्तिमें पाकर जीवनको शीतल करनेमें समर्थ हुए थे।

आज भी वर्तमान युग-समस्याका समाधान ढूँढ़ते समय हमको दृष्टि डालनी पड़ेगी उसी चार सौ वर्ष पूर्वके महासमन्वयकी मूर्तिकी ओर। वे अवतरित हुए थे नदियामें, परंतु वे थे सारे बंगालके, सारे भारतके और समस्त मानव-जातिके। सारे पृथ्वीके इतिहासको ललकार कर हम पूछते हैं कि, किसी भी युगमें क्या कभी किसीने कहीं एक ऐसे मनुष्यको देखा है, जिसे उस युगके पामरपर्यन्त सब लोग अपने प्राणके देवताके रूपमें प्रेम करते हों? राजा-प्रजा, धनी-दरिद्र, ब्राह्मण-चाण्डाल, पण्डित-मूर्ख, नर-नारी, छोटे-बड़े—सारांश यह कि सब लोग एक-सरीखे क्षेत्रमें खड़े होकर जिसके शरीरकी शीतल छायामें चिर-स्निग्ध हुए हों? जिसमें सबने अपनेको देखा हो; अपनेको देखकर, पहचानकर परायेको अपना बनाना सीखा हो?

> 'ब्राह्मणे चाण्डाले करे कोलाकूलि
> कबे वा छिलो ए रङ्ग?'

'ब्राह्मण चाण्डालको आलिङ्गन करता है, भला यह दृश्य कब कहाँ था?'

वर्तमान युग-समस्याके घोर अन्धकारमें उसी नदियाके ठाकुरके हाथमें जो प्रेम-दीप है, उसके आलोकमें ही पथ देखना होगा। आजकलकी महासमस्याका समाधान ढूँढ़नेके लिये नाना प्रकारके कोलाहलमें दबी हुई नदियाकी वाणीको ही फिर कान लगाकर सुनना होगा।

नदियाकी विशाल वाणीका केवल एक शब्दोच्चारण मात्र करनेसे काम हो जायगा। वह है—'प्रेम'। इसी एक वस्तुके अभावमें दसों दिशाएँ शून्य हो रही हैं, ईंटके ऊपर ईंट सजानेसे ही जैसे महल तैयार नहीं होता, उसी प्रकार भौतिक यन्त्रोंके पेषणसे भोग्य-वस्तुओंका विपुल सम्भार उत्पादन करनेसे ही मानवीय सभ्यता नहीं उठ खड़ी होगी। एक-एक ईंटके साथ एक-एक ईंटका सुदृढ़ एकत्र स्थापन करनेके लिये जैसे सीमेण्ट या संयोजक मसालेकी आवश्यकता होती है, मानव-हृदयके साथ मानव-हृदयका घना सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये भी उसी प्रकार आवश्यकता होती है प्रेमकी। इसी एक वस्तुके अभावमें वर्तमान युगके धुरन्धर लोगोंकी सब प्रकारकी शान्तिकी चेष्टा व्यर्थताके आघातसे मिट्टीमें मिलती जा रही है।

श्रीसनातन गोस्वामीको उपलक्ष्य करके त्रिभुवन शिक्षागुरु, सनातन पुरुष श्रीगौरहरिने जगत्के जीवों

उपलक्ष्य कर इसी हेतु सनातन वाणी सुनायी थी। सुनाया था एक निगूढ़ संवाद—'प्रेम-प्रयोजन'। प्रेमके विना मानवीय सभ्यता एक प्रहसन मात्र है। आधुनिक विज्ञान मानवीय सभ्यताको इसी प्रकारके प्रहसनमें परिणत करनेके लिये यत्नशील है। शिव-विहीन यज्ञ जैसे दक्षयज्ञ है, उसी प्रकार प्रेमहीन सभ्यता युद्धातङ्कसे ग्रस्त उन्मादरूप है। मनुष्यमें चाहे कितनी ही दक्षता हो; शिव (मङ्गल) के विना जीवनयज्ञ अंड-बंड व्यर्थ श्रममात्र है। वैज्ञानिक गवेषणा और यन्त्रोंके उत्पादनकी दक्षता असीम होनेपर भी प्रेम-प्रीति-विहीन मानव-संस्कृति मरुभूमिकी तपती हुई बालुकाकी मुट्ठी मात्र है। यथार्थ मानव-प्रेम अकस्मात् नहीं उत्पन्न होता। सहस्र-सहस्र वाग्-वितण्डाकी योजना, लक्ष-लक्ष सभा-समितियोंकी स्थापना-के द्वारा उत्पन्न नहीं होता। कोई भी बाह्य आडम्बर हृदयको सरस नहीं बना सकता।

क्षुधाकी निवृत्ति जिस प्रकार आहारके द्वारा उदर-पूर्त्तिसे होती है, मानव-प्रेम उसी प्रकार ईश्वरीय प्रेमकी अनिवार्य परिपूर्णता है। किसी कृत्रिम उपायसे मानवीय एकत्व नहीं आता। हृदयके देवताके साथ हृदयका सम्बन्ध स्थापित होनेपर ही जीव-जीवमें प्रेम सुप्रतिष्ठित होता है। कृष्ण-प्रेम और जीव-प्रेम एक ही रेखाके दो प्रान्त हैं। इन दोनों प्रान्तोंकी अखण्ड मिलन-घन-मूर्ति महाप्रभु श्रीगौर-सुन्दर हैं। सुगम्भीर भगवत्प्रेम, विश्वव्यापी मानव-प्रेम श्रीगौराङ्गके एक अङ्गमें अङ्गीभूत है। युगसमस्यामें अस्त-व्यस्त समाज यदि महामिलनके आलोकका आकांक्षी है, तो इसे नदियाके ठाकुरके चरण-चन्द्रमें ही पा सकता है। इस शताब्दीके प्रारम्भमें प्रेमविग्रह श्रीश्रीप्रभु जगद्बन्धु-सुन्दरने अपने भक्तोंके साथ दुर्दशा-ग्रस्त जगज्जीवोंके द्वारपर इसी महावाणीकी घोषणा की है। हमको चाहिये कि उसकी उपेक्षा न करें। हमको भूलना न चाहिये कि जो लोग श्रीगौरसुन्दरका करुणा-कटाक्ष प्राप्त कर प्रेमधनके धनी हो गये हैं, उनके ही समीप —

'विश्वं पूर्णं सुखायते
विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते।'

ब्रह्मा और इन्द्रके पदको भी तुच्छ करके विश्वको सुखमय बनानेके लिये करुणासिन्धु श्रीगौरसुन्दरका कृपा-कटाक्ष हम उन्मार्गगामी लोगोंके लिये परम संबल बने।

'स्व' का विस्तार करो

सबमें देखो निज आत्माको, सबमें अरे, स्वयं भगवान।
सबकी सेवा करो, करो सबका प्रिय कार्य, छोड़ अभिमान॥
सबको सुख पहुँचाओ, विश्छल मनसे करो सभीका मान।
सबके बनो सदा हित-साधक, करो प्रेम सबसे निर्मान॥
'स्व' को रखो न सीमित, कर दो सब जगमें उसका विस्तार।
समझो परका स्वार्थ, स्वार्थ निज, करो सहज सबका उपकार॥
कर प्रकाश अध्यात्म-ज्योतिका, करो तुरंत मोह-तम नाश।
बनो त्याग-तपमय शुचि जीवन, तजो मधुर-विष भोग-विलास॥

जीवनके वैदिक आदर्श

(लेखक—पं० श्रीरामप्रसादजी पाण्डेय)

व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रीय जीवनपर भौगोलिक परिस्थितियोंका प्रभाव पड़ता है, परंतु उतना नहीं जितना सामान्यतः समझा जाता है। जीवन और वृत्तका निर्माण प्रधानरूपसे जातीय आदर्शों एवं धार्मिक विश्वासों तथा विचारोंके द्वारा होता है। किसी भी देश और जातिका इतिहास इसका साक्षी हो सकता है। जाति और भौगोलिक स्थिति एक ही होती है, परंतु राष्ट्रोंका उत्थान और पतन होता हुआ दिखायी देता है। स्वतः भारतके अतीतको देखिये तो एक कालमें यह अत्यन्त समृद्ध और सुखी मिलेगा, शूरवीरोंसे भरा हुआ मिलेगा और दूसरे कालमें निर्बल, निःसहाय तथा कायरतापूर्ण मिलेगा जब विदेशियोंद्वारा आक्रान्त हो गया हुआ मिलेगा। अत्यन्त प्राचीन कालमें आर्यवीर और उनका कला-कौशल जगद्विख्यात था, परंतु इधर ग्यारहवीं शतीसे लेकर अभी हालतक विदेशी दासतामें फँसा हुआ था। विचारसे देखा जाय तो सभी उत्थानोंके पीछे ठीक और उदात्त आदर्श मिलेंगे और पतनोंके पीछे अनुदात्त एवं कायर आदर्श मिलेंगे।

यदि वैदिक कालके जीवन और आदर्शोंपर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि उस समयकी समृद्धिका कारण वेदोंके ओज-तेजपूर्ण उपदेश थे, उदात्त वैदिक आदर्श थे, जिनकी झलक वेदोंके मन्त्रोंमें स्पष्टरूपसे मिलती है और जिनकी आज अधिकाधिक आवश्यकता है। यह परितापका विषय है कि वैदिक साहित्य और उस साहित्यका, जिसमें वेदोंके आदर्शोंका प्रतिपादन है, जैसे कालिदासकी प्रधान रचनाओंका प्रभूत अध्ययन-अध्यापन, प्रायः नहीं हो रहा है, यद्यपि हम स्वतन्त्र हैं। हमारे स्वतन्त्र राष्ट्रको 'धार्मिक निरपेक्षता'की व्याधि लग गयी है, जिसके कारण हमारा सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन निर्बल होता जा रहा है, नैतिक पतन हो रहा है। इसपर ध्यान देनेकी परम आवश्यकता है। धार्मिक निरपेक्षता अथवा ऐहिकताको लेकर भ्रम और अन्धकारका प्रसार हो रहा है। इसका कदापि यह अर्थ नहीं कि बहुसंख्यक जातिको धर्म और संस्कृतिसे दूर कर दिया जाय, वरं वास्तविक उद्देश्य यह है कि सभी धर्मों और संस्कृतियोंका आदर किया जाय, सभीको उन्नत रक्खा जाय। समाजवादी सरकारका यह भी कर्तव्य होना चाहिये कि वह सांस्कृतिक खुराक भी दे, केवल अन्न-जलकी योजनासे राष्ट्रका जीवन पूर्ण नहीं होगा।

यहाँ हम कतिपय वैदिक मन्त्रोंको देकर यह दिखानेका प्रयत्न करेंगे कि जीवन क्या है, उसका स्वरूप क्या है, जीवनका सच्चा आदर्श क्या है और वैदिक कालका घरेलू एवं सामाजिक जीवन कैसा था। उन आदर्शोंमें, अन्य विषयोंके साथ, सच्ची ऐहिकता अथवा धार्मिक निरपेक्षताकी भी झलक मिलेगी, जो हमारा ठीक-ठीक मार्ग-प्रदर्शन भी कर सकती है।

वैदिक विचारधाराकी सबसे पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसमें जीवनको सहर्ष अपनाया जाता है, इस लोकको अपना सुन्दर एवं सुवास्य आवास कहा जाता है, जहाँ शरीरको सुखी करनेके जैसे साधन उपलब्ध हैं, वैसे ही आत्माकी तुष्टिके हेतु ईशका सांनिध्य भी वर्तमान है—ईशावास्यमिदं सर्वम्।

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना
अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा
दीर्घमायुः करति जीवसे वः॥
(ऋ० १०। १८। ६)

'जीवनको (आयुः) स्वीकार करो और वार्धक्य

का स्वागत करो । तुम सभी एक दूसरेके पीछे क्रमसे प्रयत्न करते जाओ । सुन्दर वस्तुओंका विधायक देव तुमपर प्रसन्न हो और तुम्हारे जीवनको दीर्घ करे ।' यह मन्त्र अथर्ववेदमें भी दुहराया गया है, जहाँ केवल अन्तिम पद कुछ भिन्न है, यथा—

सर्वमायुर्नयतु जीवनाय । (अ० १२ । २ । २४)

'जीवनकी सार्थकताके हेतु अपनी पूरी आयु बिताओ ।'

जीवनकी इस उपादेयताको बारंबार दुहराया गया है—'जीवेम शरदः शतम्' आदि स्तुतियोंमें आयु और बलके लिये प्रार्थना की जाती है ।

जीना अच्छा तो सभीको लगता है, परंतु उसे वास्तवमें अच्छा बनानेके लिये सतत सक्रिय रहना आवश्यक है, आलस्य छोड़कर कर्ममें प्रवृत्त होना, कर्मण्य रहना, अनिवार्य है । अतः यह ओजस्वी उपदेश है—

त्रातारो देवा अधि वोचता नो
मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः ।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥
(ऋ० ८ । ४८ । १४)

'रक्षा करनेवाले देव ! हमको आशीष दो । व्यर्थकी वार्ता और निद्रा दोनों हमसे दूर रहें । वीरोंसहित हम धर्म-स्थानमें बोलें ।' 'जो कर्मण्य है वही देवोंको प्रिय होता है । देव स्वप्नको नहीं चाहते हैं । वे अतन्द्र हैं और आलस्यको दण्डित करते हैं ।' इस पूरक उपदेशको हम ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनोंमें पाते हैं—

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं
न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥
(ऋ० ८ । २ । १८, अ० २० । १८ । ३)

ऋक्में फिर कहा गया है—

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ॥

'जो श्रम करता है केवल उसीको देव अपना मित्र बनाते हैं ।'

कर्मण्यतापर इस प्रकार बल देकर सत्कर्मका निरूपण इस मन्त्रमें किया जाता है—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥
(ऋ० १० । ३४ । १३)

'जूआ मत खेलो, अपने खेतोंको जोतो और बोओ, महत्त्वपूर्ण जानकर, धनसे आनन्दित हो, अपनी स्त्री और गायोंकी चिन्ता-रक्षा करो, यह सवितादेवका आदेश है ।' ईश्वरके ध्यानके साथ इहलौकिकताका—घर और खेतीका—यह कितना सुन्दर आदर्श है और 'वित्ते रमस्व'में कितनी व्यावहारिकता है ।

इस प्रकार भक्ति, उद्योग, गार्हस्थ्य और धनकी प्रेयताके सङ्ग-सङ्ग सत्य और नियमपर बल दिया जाता है, असत् मार्ग या साधनसे सर्वथा बचनेका आदेश किया जाता है—

परि चिन् मर्तो द्रविणं ममन्याद्
ऋतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
(ऋ० १० । ३१ । २)

'मनुष्यको धनकी चिन्ता करनी चाहिये और सन्मार्गसे ही प्रयत्न करना चाहिये और साथ-साथ देवाराधना भी होनी चाहिये ।'

वैदिक ऋषि जितना ईश और धनोपार्जनका ध्यान करते हैं, उतना ही जीवनप्रेयताके आधारस्वरूप स्त्रीके गुण-स्वभावका बारंबार चिन्तन करते हैं, अनेक सुन्दर और महान् अवसरोंमें उसको उपमान बनाते हैं—

निष्कृतं जारिणीव । (ऋ० १० । ३४ । ५)
कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ । (ऋ० १ । १२३ । १०)

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा । (ऋ० १ । १२३ । ११)
योषेव भद्रा । (ऋ० ५ । ८० । ६)

'नियत समयपर प्रेयसीकी भाँति आनेवाली,' 'गुणगर्वा कन्याकी भाँति,' 'माताद्वारा सँवारी हुई युवतीकी भाँति,' 'सुशीला युवतीकी भाँति' आदि उषाकी सुन्दरताके वर्णनमें कहा गया है । एक दूसरे संदर्भमें देवकी महिमाको स्पष्ट करनेके लिये **'अनवद्या पतिजुष्टेव नारी'** कहा गया है । अर्थात् भगवान्‌की शुभ्रताका अनुमान करानेके लिये 'पतिव्रता नारी'का चित्र उपस्थित किया जाता है । यह ऋग्वेदका १ । ७३ । ३ वाँ मन्त्र है । अथर्ववेदके एक मन्त्रमें ईश्वरको सभी रूपोंवाला कहते हुए पहले उसे स्त्री कहा है—**'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि'** आदि ।

इन मन्त्रोंके भावोंके लालित्यको केवल समझा जा सकता है, शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता—

समुझत बनै, बरनि नहिं जाई ।

ये लोक-परलोककी अनुपम अन्विति उपस्थित करते हैं । वेदादर्शमें लोक-परलोक भिन्न नहीं, अपितु समन्वित हैं । देव, धन, प्रेम, शृङ्गार, कर्मण्यता, पावनता आदि सभी मिलकर जीवनका चित्र उपस्थित करते हैं । वेदोंकी ऐहिकतामें विचित्र परमार्थता ओतप्रोत है । सभी सत्‌की विभूतियाँ हैं, सभी पावन और उपास्य हैं । अपावन है—केवल असत्, अनृत !

इस लोक-लालित्यके साथ, वैदिक आर्योंमें शौर्य और वीरत्वकी भावनाका भी सदा दर्शन होता है । उत्साहसे आगे बढ़ते जाना, शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना, सदा सचेष्ट रहना, उनका प्रधान गुण दिखायी देता है । विद्वेषी खजन भी उनके आघातका विषय है । सच पूछिये तो यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि वैदिक ऋषियोंको प्रधानतया ब्राह्म कहें या क्षात्र । दोनों स्वभाव साथ-साथ सामने आते हैं—

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥

"वीरो ! आगे बढ़ो और जीतो, विजयी हो, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें, तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र शक्तिमान् हों जिससे तुम अक्षत रहो ।' यह चारों वेदोंमें आता है—(ऋ० १० । १०३ । १३, साम० १८६२, य० १७ । ४६, अथ० ३ । १९ । ७) जिससे इस आदर्शकी प्रधानता और सर्वव्यापकता सूचित होती है । ऐसे तन्त्रोंकी बहुलता है । वैदिक आदर्शको सामासिक रूपसे यजुर्वेदके २० । २५वें मन्त्रमें अत्यन्त सुन्दर रूपसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेयं यत्र देवाः सहाग्निना ॥

'वही सुन्दर देश है जहाँ आत्मिक ज्ञान और लौकिक वीरताका सम्मिलन होता है, जहाँ देवगण अग्निके सङ्ग वास करते हैं ।' आर्य-संस्कृतिसम्बन्धी यह सुन्दरतम उक्ति है । गीतोपदेशके अन्तमें, आगे चलकर, इसी आदर्शको दुहराया गया है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
(गीता १८ । ७८)

ईशोपनिषद्‌में, जो यजुर्वेदका ही अंश है, इसी आदर्शको विद्या-अविद्या, सम्भूति-विनाशका मेल कहा गया है । हमारी मौलिक संस्कृतिका यही जीवनविषयक संदेश है । इसको फिरसे धारण करनेकी आवश्यकता है । संस्कृत काव्योंमें नायक उसीको बनाया जाता था जो ज्ञान-शौर्यसे युक्त होकर लोकका नेता होता था । काव्य और जीवन दोनोंके आदर्शोंको कालिदासने रघुवंशियोंके लक्षणोंके मिस इस प्रकार व्यक्त किया है ।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥

'शैशवकालमें विद्याभ्यास, यौवनमें विषयोंका सेवन और वार्धक्यमें योगाभ्यास रघुवंशियोंका विशेष लक्षण था।' झूठे आदर्शों और उपदेशोंके चक्करमें पड़कर हम इन उदात्त भावोंको भूलते जा रहे हैं। राष्ट्रमें बल लानेके लिये इनको अपनाना, इनका प्रचार करना, समीका और विशेषतः समाजवादी सरकारका पुनीत कर्तव्य है। लोकनृत्य और लोकगीत ठीक हैं, परंतु वे ही भारतीय संस्कृतिको व्यक्त नहीं करते। क्या यह सरकारी प्रकाशनविभागका कर्तव्य नहीं है कि विश्वविख्यात कालिदासकी रचनाओंका सानुवाद सुलभ संस्करण निकालें? गाँधी-साहित्यसे उनकी अधिक उपयोगिता है। वेद केवल हिंदुओंके ही ग्रन्थ नहीं हैं। प्राचीनतम लेख होनेके कारण, वे विश्वकी निधि हैं। उनके उद्धारसे धार्मिक निरपेक्षताको आघात नहीं पहुँचेगा।

वैदिक संस्कृति, एक अर्थमें लोककी संस्कृति है। उसमें एक विचित्र और अत्यन्त पावन ऐहिकताका संदेश है। उससे लोकको ओज और तेज, साहस और स्फूर्ति मिल सकती है। उसके जीवन-प्रेममें वह वैचित्र्य है, जिसकी हमको परम आवश्यकता है।

दीपावलीका नया दृष्टिकोण

[माता लक्ष्मीका अपमान नहीं होना चाहिये]

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

हिंदू-तत्त्वज्ञानी अपनी प्रतीक-पद्धतिके लिये प्रसिद्ध हैं। उन्होंने देवी-देवताओंके रूपमें ऐसे प्रतीक बनाये हैं, जिनसे जन-साधारणको मौलिक विचार और शुभ भावनाएँ सदा ही मिलती रहती हैं। हमारी तीनों देवियाँ सरस्वती, दुर्गा और लक्ष्मी हमारे तीन प्रतीक हैं। खेद है कि हम इन प्रतीकोंका अर्थ भूलते जा रहे हैं। सरस्वती ज्ञान, दुर्गा शक्ति और लक्ष्मी धनकी शक्तिकी प्रतीक हैं।

धनमें पवित्रताका समावेश

देवी लक्ष्मी धनकी शक्तिकी प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृतिके अनुसार और हिंदूधर्मके दृष्टिकोणसे देवी लक्ष्मी समाजकी आर्थिक शक्तिकी अधिष्ठात्री हैं। उनकी कृपासे आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त होती है।

हिंदू बड़े दूरदर्शी होते हैं। जो बात उन्हें उपयोगी प्रतीत होती है, उसे वे धर्मका अङ्ग बनाकर उसमें पवित्रता, शुचिता, देवत्व, सदुपयोग, श्रेष्ठता और संयमके दिव्यगुणोंका समावेश कर देते हैं।

धनको देवीका स्वरूप देनेका अर्थ है उसमें पवित्रताका समावेश करना। हम धनको समाजके लिये एक पवित्र शक्ति मानते हैं। समाजको सत्पथपर चलाते रहने, पिछड़ोंको आगे बढ़ाने, दैवी कार्योंकी पूर्तिके लिये धनका उपयोग होता रहे, इसलिये उसे देवीका रूप दिया गया है। लक्ष्मीजीकी पूजाका सच्चा अर्थ यह है कि धनका उपयोग हमारे समाज, व्यक्ति तथा देशके शुभ कार्योंमें हो। समाजकी भलाईमें ही वह व्यय हो। तभी धनकी सार्थकता है। यही लक्ष्मी-पूजा है।

लक्ष्मीजी भारतीय अर्थ-व्यवस्थाकी प्रतीक हैं। पैसेके उपयोगमें जो सावधानियाँ बरतनी चाहिये, वे लक्ष्मीजीकी पूजामें निहित हैं। जो लोग रुपयेका दुरुपयोग करते हैं, वे माता लक्ष्मीजीका प्रत्यक्ष अपमान करते हैं।

धनका सदुपयोग करें

धनको लक्ष्मीजीका रूप स्वीकार करनेपर प्रत्येक सद्गृहस्थ हिंदूको उसका सदुपयोग करना चाहिये। अर्थकी शक्तिका आजके युगमें हम पग-पगपर अनुभव करते हैं। उसका सदुपयोग कर हम जनता-जनार्दनकी सर्वाधिक सेवा कर सकते हैं। भारतीय शास्त्रकारोंके कुछ आधारभूत जीवन-सिद्धान्त स्मरण रखने चाहिये। धन पवित्र साधनोंसे कमाया जाय और जनताके हितमें व्यय किया जाय—

उतो रयिः पृणतो नोपदस्यति ।

(ऋग्वेद १० । ११७ । १)

अर्थात् दान देनेवाले सत्पुरुषकी सम्पदा घटती नहीं, सदा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है ।

सत्कार्योंमें लगाया धन बैंकमें जमा पूँजीके समान सुरक्षित है । धर्मशालाएँ, पुस्तकालय, प्याऊ, वृक्ष लगाना, स्कूल बनवाना, धर्मार्थ चिकित्सालयोंकी स्थापना, जानवरोंके लिये जलका प्रबन्ध करना, ग्रामोंकी सफाईका प्रबन्ध, कुशाग्रबुद्धि, छात्रोंकी शिक्षाका उचित प्रबन्ध करना—ये सब माता लक्ष्मीकी आराधना और सेवाके अचूक उपाय हैं । ये सत्कार्य समाजको ऊँचा उठानेवाले हैं । अपनी रुचि और आर्थिक सुविधाके अनुसार दान और सेवाका रूप स्थिर करना चाहिये ।

जो धन पिछड़े हुए व्यक्तियोंके उत्थानमें लगता है, वह पूजाके समान फलदायी है । धन संग्रहके लिये नहीं, समाजकी सेवामें व्यय होना चाहिये । कहा गया है—

अदित्सन्तं दापयतु प्रजानन् ।

(अथर्ववेद ३ । २० । ८)

अर्थात् कंजूसोंको भी निरन्तर दान देनेकी ही प्रेरणा देते रहिये ।

स्वयं सत्कार्य करना ही यथेष्ट नहीं है । वह तो आपका कर्तव्य है ही, आपके आसपास जितने मित्र हैं, उनको भी धनको पवित्र कार्योंमें लगानेकी प्रेरणा देनी चाहिये । उन अल्पबुद्धि कंजूसोंको समझाओ कि यह धन आपका नहीं, बल्कि सारे समाजका है । धन व्यर्थ ही जमा करते जानेका नहीं, सदुपयोग करनेका माध्यम है । उससे आप, आपकी संतान, आपका परिवार, आपका पड़ोस, प्रान्त, देश और समस्त देश लाभ उठा सकता है । अभावग्रस्त और पीड़ितों-के सेवाकार्यमें उसका व्यय होना चाहिये ।

सुपात्र-कुपात्रका सदा ध्यान रखिये

लेकिन सहायता सुपात्रकी ही होनी चाहिये । आपने यदि कुपात्रकी सहायता की तो वह समाजमें उत्पात कर सकता है । खूब परखकर अच्छी वृत्तियोंवालेकी सेवा करनी चाहिये । शास्त्रोंमें कहा है—

रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।

(अथर्ववेद)

अर्थात् दानमें सदा विवेकसे काम लो और सत्पात्रोंको ही दान करो ।

आप जब सहायता करने निकलें तो पात्र-कुपात्रका सावधानीपूर्वक विवेक करें । धैर्यपूर्वक सोचें-विचारें । जो सद्वृत्तियोंवाले सुपात्र हैं, उन्नतिशील हैं, केवल उन्हींको दान दें । कुपात्रोंको दिया दान दाताको नरकमें ले जाता है ।

न पापत्वाय रासीय

(अथर्ववेद २० । ८२ । १)

अर्थात् कुपात्रोंको दान मत दीजिये । सर्पको दूध पिलानेकी भाँति कुपात्रतामें और भी वृद्धि न कीजिये ।

दत्तान्मा यूपम्

(अथर्ववेद ६ । १२३ । ४)

अर्थात् दान देनेकी दिव्य और उपयोगी परम्परा बंद नहीं होनी चाहिये । माता लक्ष्मी कहती हैं कि आपके पास ज्ञान, बल, योग्यता अथवा धन जो कुछ भी है समाज और पीड़ित व्यक्तियोंको देनेके लिये है, उसे दूसरोंके हितमें सम्पूर्ण जीवन लगाते रहिये ।

ध्यानसे देखिये कि किस सद्वृत्तियोंवाले व्यक्तिको आपकी आर्थिक सहायताकी आवश्यकता है । अपने नामके विज्ञापनकी परवा मत कीजिये । सर्वश्रेष्ठ आर्थिक सहायता वह है जिसमें दाताका नाम नहीं बताया जाता ।

यह धन सारे समाजका है

कस्यस्विद्धनम् । (यजुर्वेद ४० । १)

अर्थात् याद रखिये, आपके पास जो धन है, उसपर केवल आपका ही अधिकार नहीं है, वह धन तो सम्पूर्ण राष्ट्रका है और सामूहिक हितमें ही व्यय होना चाहिये ।

माता लक्ष्मीका संदेश है कि धनपर कब्जा करके मत बैठो । परिवार, समाज और राष्ट्रके हितके लिये उसका सदुपयोग करते रहो ।

व्यापारमें धार्मिक दृष्टिकोण ही रखिये

न स्तेय मद्मि ।

(अथर्ववेद १४ । १ । ५७)

अर्थात् चोरीका धन कभी भी कार्यमें मत लीजिये । जो न्यायोचित नहीं है, जिसमें ईमानदारी और श्रम नहीं लगा है, उसे त्याग दीजिये ।

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।

(अथर्ववेद १८ । २ । ३८)

अर्थात् माता लक्ष्मीका संदेश है कि आप वस्तुस्थिति एवं नाप-तौलमें गड़बड़ी न कीजिये। अपने व्यापारमें नाप-तौल पूरा दिया कीजिये। व्यापारमें किसी भी प्रकारकी बेईमानी हो, वह व्यापारको जड़मूलसे नष्ट कर देती है।

पापका व्यापार थोड़े दिन तो चमकता दीखता है, पर अन्ततः वह गाँठकी पूँजी भी नष्ट कर देता है। माता लक्ष्मी कहती हैं—

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि।

(अथर्ववेद ७ । ११५ । १)

अर्थात् पापकी कमाई छोड़ दीजिये। कठोर श्रम, अध्यवसाय और पुण्यभाव, सेवाभाव रखकर कमाया धन ही मनुष्यके पास ठहरता है।

पसीनेकी पुण्य कमाईसे ही मनुष्य सुखी और मानसिक दृष्टिसे तृप्त बनता है।

धनका उपयोग सद्गुणोंकी वृद्धिके लिये किया जाय

सद्गुण और लक्ष्मी—इनका परस्पर योग है। मनमें ईर्ष्या, द्रोह, द्वेष, लोभके भाव रखनेवालेका व्यापार नष्ट हो जाता है।

भारतीय ऋषियोंने धनकी ईमानदारी, उचित साधनों और सेवाभावको बहुत महत्त्व दिया है। कहा है—

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः।

(अथर्ववेद ७ । ११५ । ४)

अर्थात् यह आजमाया हुआ नुस्खा है कि ईमानदारीसे कमाया हुआ धन ही मनुष्यके पास ठहरकर उसे स्थायी लाभ पहुँचाता है। बेईमानीकी कमाईसे कोई फूलता-फलता नहीं है।

देवो वार्य बनते।

अर्थात् धन उन्हींके पास ठहरता है, जो सद्गुणी नागरिक हैं अन्यथा दूसरी पीढ़ीमें दुराचारी संतानके द्वारा वह नष्ट कर दिया जाता है। अपनी संतानको सद्गुणी न बनाया तो विपुल सम्पदा भी स्वल्प कालमें नष्ट हो जाती है।

भारतीय मनीषियोंने सदा उत्तम और पवित्र साधनोंसे कमाये हुए धनको ही मान्यता दी है और धर्मके अन्तर्गत उसे स्थान दिया है। व्यापारमें धार्मिक दृष्टि रखनेसे गुप्त दैवी सहायताका विधान रहा है। अनैतिक साधनोंसे कमाये हुए धनसे कभी स्थायी लाभ नहीं दिखायी दिया है। आनेवाली पीढ़ीने उसे समाप्त कर दिया है। इसलिये धनका उपयोग सद्गुणोंके विकासमें ही होना चाहिये।

साधनोंकी पवित्रताका सदा ध्यान रखिये

माता लक्ष्मी हमें धनकी पवित्रता, साधनोंका औचित्य तथा अन्तःकरणकी शुद्धिका संदेश देती हैं। मनुष्य धनके पीछे अन्धा न हो जाय; छल, कपट, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, झूठ, अन्याय आदि अनैतिक उपायोंका प्रयोग न करे, असुरताकी गंदगीमें न फँस जाय,—यही दृष्टिकोण सदा रहना चाहिये।

आज धनकी अपवित्रता, लालच, झूठ-फरेबके कारण भाई-भाईका व्यवहार छलपूर्ण है, मालिक-नौकरमें नहीं पटती, ग्राहक और दूकानदारके सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं, ये सब आर्थिक कारणोंकी स्वार्थमयी नीतिके कारण हैं। अतः ये सम्बन्ध मधुर बनने चाहिये।

अर्थ भी धनका महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। परमात्माकी एक शक्ति है। मानवताकी सेवा और सार्थकताका साधन है। इस सम्पदाका उपयोग मनुष्यकी महानताके विकासके लिये होना चाहिये।

ऋणसे मुक्तिका संदेश

जहाँ एक ओर पापकी कमाईसे सावधान किया गया है, वहाँ हमें ऋणग्रस्त होनेसे भी सचेत किया गया है। हम जितना कुछ धर्मके साधनोंसे कमायें, उसीमें अपना निर्वाह करें। व्यर्थके दिखावे, फैशनपरस्ती, नशाबाजी, सिनेमा आदि ऋण होनेके समस्त मार्गोंसे बचते रहें।

हम अपनी जिह्वापर लगाम रखें। नियम और संयमसे जीवन-निर्वाह करें। शास्त्रकारोंकी सलाह है—

अनृणो भवामि। (अथर्ववेद ६ । ११७ । १)

अर्थात् अपनी आमदनीमेंसे ही खर्च चलाओ। किसीके ऋणी मत रहो। किसी भी अवस्थामें अपनी आर्थिक स्थितिसे बाहर खर्च मत करो।

अनृणाः स्याम। (यजुर्वेद ३२

अर्थात् मनुष्यो! संसारमें प्रसन्न और यशस्वी रहनेके लिये कर्जदार मत बनो। ऐसे काम मत करो जिससे ऋण लेना पड़े।

सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम ।
(यजुर्वेद ३२)

अर्थात् जो ऋणमुक्त है, उसीकी उन्नति होती है। ऋणग्रस्त व्यक्ति दिन-दिन घुलता जाता है ।

धनका मद आसुरी माया है !

मूर्ख, अल्पज्ञ और अभिमानी पापियोंके हाथमें इकट्ठा हो जानेसे धन पतनका कारण बन जाता है । उधरसे सावधान रहना चाहिये ।

लक्ष्मीजीको कुछ दिनोंके लिये असुरोंने अपने अधिकारमें रक्खा था । इसलिये धनपर आसुरी छाप है । दुष्ट और अपात्रोंके हाथोंमें इकट्ठा होकर धन आसुरी कार्योंमें लगता है और विकृत हो जाता है । विलासी, काम-लोलुप, अविवेकी पुरुष धनके द्वारा अपवित्र, गंदे और अधार्मिक कार्य करते हैं, जो सर्वथा त्याज्य हैं । लक्ष्मीजी इन कार्योंसे अप्रसन्न होती हैं ।

मूर्ख कुकर्मी व्यक्तियोंके पास आकर इसका दुरुपयोग कैसे किया जाता है, इसका उल्लेख 'कादम्बरी'में इस प्रकार किया गया है । इनसे सदा सावधान रहना और बचना चाहिये—

यथा यथा इयं दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति । अनया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति । तेषां दाक्षिण्यं प्रक्षाल्यते, हृदयं मलिनीभवति, सत्यवादिता अपह्रियते, गुणाश्चोत्सार्यन्ते । केचित्सम्पद्भिः प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलतामुपयान्ति । आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति ।

अर्थात् कुसंस्कारी पापी और विलासी पुरुषोंके पास ज्यों-ज्यों धन बढ़ता है, त्यों-त्यों वह अधार्मिक, गंदे और दूषित कार्योंमें लगता है। वह कुविचारोंको उत्पन्न करता है जैसे दीपककी लौ केवल काली-काली कालिख ही उगलती है ।

इसके किसी प्रकार अभाग्यवश पकड़ लिये जानेपर (अर्थात् लक्ष्मीजीके बुरे प्रभाव पड़ जानेपर) राजा तक बेसुध हो जाते हैं और मूर्खताओं तथा कुकर्मोंके निवासस्थान बन जाते हैं । उनकी उदारता धुल जाती है, हृदय मलिन हो जाता है, सत्यवादिता दूर हो जाती है और सद्गुण भाग जाते हैं ।

कुछ लोग रुपयेके लालचमें पड़कर विकारों (वासनाओं, कुविचारों, हिंसादि क्रूर कर्मों, व्यभिचारकी दूषित योजनाओं) के आक्रमणसे विवश होकर बेसुध हो जाते हैं। वे मरणासन्न लोगोंके समान अपने मित्रोंको नहीं पहचानते ।

इस प्रकार धनकी त्रुटियोंसे सदा सतर्क रहना चाहिये । आगे कहा गया है—

मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून् । जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम् । आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने । सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तस्मै ददति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तं बहु मन्यन्ते योऽहर्निशमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति यो वा माहात्म्यमुद्भावयति ।

अर्थात् कुसंस्कारी और कुविचारी धनीलोग झूठे बड़प्पनके घमंडमें भरकर देवताओंको नमस्कार नहीं करते।

जिन्हें प्रणाम करना चाहिये, उन्हें प्रणाम नहीं करते और बड़ोंको देखकर उनके सम्मानके लिये नहीं उठते ।

विद्वान् वृद्धोंके उपदेशको समझते हैं कि बुढ़ापेकी निर्बलताके कारण बक-झक कर रहे हैं ।

मन्त्रीके उपदेशसे अप्रसन्न होते हैं और समझते हैं कि यह अपनी बुद्धिकी हार है ।

वे धनके मदमें इतने चूर रहते हैं कि भलाईकी बात कहनेवालेपर भी क्रोध करते हैं ।

जो रात-दिन हाथ जोड़े रहते और झूठी प्रशंसा करते हैं और अपने कर्तव्य छोड़कर उनकी इष्टदेवताके समान स्तुति करते हैं, या जो उनके बड़प्पनकी घोषणा करते हैं, वे उन्हींकी बात सुनते हैं, उन्हींका आदर करते हैं और उन्हींको अपने साथ रखते हैं ।

उपर्युक्त सभी दुर्गुणोंमें लिप्त रहनेसे माता लक्ष्मीका अपमान होता है । हमें चाहिये कि हम इन दुर्गुणोंसे सदा-सर्वदा सावधान रहें । हमारे धनसे कोई ऐसा दुष्कर्म नहीं होना चाहिये जिससे माता लक्ष्मी अपमानित हों ।

ज्ञान ही शक्ति है

(लेखक—श्रीहरिमोहनलालजी श्रीवास्तव एम्० ए०, एल्-एल्०बी०, एल्०टी०)

'ज्ञान वह पंख है, जिससे हम उड़कर स्वर्गतक पहुँच सकते हैं।'—शेक्सपियर

शक्तिके प्रति प्रेम जन्मजात है। जैसे-जैसे मनुष्य बढ़ता जाता है, शक्तिका प्यार भी विकसित होता जाता है। कुछ लोग शारीरिक शक्ति प्राप्त कर रखनेके लिये प्रयत्नशील होते हैं, कुछ बौद्धिक शक्ति चाहते हैं और बहुत थोड़े नैतिक शक्तिके लिये प्रयास करते हैं। कुछ लोगोंका लक्ष्य होता है कि वे धनके द्वारा शक्ति प्राप्त कर रक्खें। कुछ दूसरे उच्च सामाजिक श्रेणीके माध्यमसे शक्ति बटोरना चाहते हैं, जब कि कुछ ऐसे भी होते हैं जो प्रभुताके रूपमें शक्तिका संचय कर रखना चाहते हैं; परंतु सबसे बड़ी शक्ति है अपनेको जानना और ऐसा ज्ञान जीवनमें बहुत कठिन है।

प्रागैतिहासिक कालमें मनुष्यका ज्ञान नितान्त सीमित था। अतः उसे प्रकृतिकी अनेक शक्तियोंसे भय लगा रहता था। फलतः वह बड़े-बड़े वृक्षोंके समक्ष भी शीश झुकानेके लिये सदैव प्रस्तुत रहता था। ज्ञानका प्रकाश पास न होनेके कारण वह सब प्रकार स्वतन्त्र होते हुए भी स्वतन्त्रताका उपभोग नहीं कर पाता था और भयके बन्धनसे सदा आक्रान्त था।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, मनुष्यने अपने ज्ञानमें प्रगति की, वह प्रकृतिके रहस्योंकी खोज करने लगा। सभ्यतामें प्रगतिका अर्थ ज्ञानके विकाससे अलग कुछ नहीं है। विज्ञानके उदयने मानवको बहुत अधिक शक्तिसे सम्पन्न कर दिया। वैज्ञानिक प्रगतिके फलस्वरूप मनुष्य अब और दुर्बल और असहाय नहीं रहा। प्रागैतिहासिक दिनोंमें उसे जो भय बना रहता था, उसपर उसने क्रमशः विजय प्राप्त कर ली। भय, जो सब सद्गुणोंके विकासके लिये रुकावट है, दूर करके उसने आत्मशक्तिको पहचाना। तब उसके लिये सुख, सुविधा और स्वतन्त्रताका द्वार खुल गया।

अब वह प्रकृतिकी शक्तियोंपर उल्टा अधिकार जमाने लगा। उसने बाँध बनानेका प्रयत्न किया और जलके वेगको जीत लिया। तब फिर उसने वायुमें उड़ान भरना सीखा। प्रकृतिके रहस्योंके विषयमें ज्ञानने उसे शक्तिसे सुसज्जित कर दिया एक साहसी योद्धाकी भाँति। जल-थलपर विजय-पताका फहराकर आज वह अन्तरिक्षपर नियन्त्रण जमानेके लिये आकुल है और ग्रहों-उपग्रहोंमें झंडे गाड़ रखना चाहता है।

प्रागैतिहासिक दिनोंमें शक्तिका अभिप्राय था केवल शारीरिक शक्ति। परंतु सभ्यताके विकासके साथ शक्तिके दो अन्य रूप—मानसिक अथवा बौद्धिक शक्ति एवं नैतिक अथवा आध्यात्मिक शक्तिको भी पहचाना जाने लगा। मनुष्य सभ्यताके पथपर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ा, मानसिक शक्तिको अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण पद दिया गया, यद्यपि आज कितने ही आध्यात्मिक शक्तिको प्रमुखता देंगे। रामकृष्णके अनुसार वास्तविक ज्ञान वह है, जिससे अन्तरमें ईश्वरका अनुभव किया जाय।

आज तो मनुष्य अन्तरिक्षमें राकेट भेजने लगा है। अपनेसे कहीं शक्तिशाली हिंसक जीवोंको तो वह बहुत पहले ही अपने आधिपत्यमें ले आया था। साथ ही उसने कितनी ही भयंकर बीमारियोंपर अपना नियन्त्रण स्थापित किया है। यह सब सफलता उसने अपने बढ़े हुए ज्ञानके द्वारा अर्जित की है। अध्यात्मके क्षेत्रमें आज भी दार्शनिक लोग मानव-मस्तिष्कके अध्ययनमें व्यस्त हैं और वे कितनी ही जटिलताओंकी खोज कर चुके हैं। ज्ञानके सुफल जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें परिपक्वता प्राप्त कर रहे हैं, भले ही भौतिक लाभोंपर दृष्टि-विशेष होनेके कारण प्रयास उधर अधिक हो।

संक्षेपमें कला, विज्ञान एवं संस्कृतिका समस्त विकास ज्ञानपर निर्भर करता है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि ज्ञान मनुष्योंको अपार शक्ति प्रदान करता है। ज्ञानने ही मनुष्यके जीवनको पहलेसे कहीं अधिक सुखमय बनाया है। समष्टिकी ही बात नहीं है, व्यष्टिके लिये भी ज्ञान परम सुख है और प्रकृतिके समस्त आनन्दसे कहीं बड़ा है। बेकनके अनुसार—मनुष्य ज्ञानसे कभी नहीं ऊबता—ज्ञानसे तृप्ति और उसके प्रति बुभुक्षा निरन्तर अपना आसन बदला करती है।

संसारमें प्रत्येक वस्तुके दो पहलू हुआ करते हैं। ज्ञान भी लाभ और हानिके दुहरे वरदानसे सम्पन्न है। ज्ञानसे होनेवाले लाभ उसके सदुपयोगपर उसी प्रकार आश्रित हैं, जिस प्रकार उससे प्राप्त हानियोंका कारण ज्ञानका दुरुपयोग बनता है। ज्ञानको मानवताके कल्याणके लिये भी प्रयुक्त किया जा सकता है और मानव-सृष्टिके विनाशके लिये भी हम उसे काममें ले सकते हैं। एक विद्वान्ने कहा है कि ज्ञानसे होनेवाले खतरोंकी अविद्याके खतरोंसे कोई तुलना ही नहीं की जा सकती। हर्बर्टका कथन है—'ज्ञान केवल मूर्खता है, यदि ज्ञान उसका संचालन न करे।'

परंतु सच्चा ज्ञान और वास्तविक शक्ति वह है, जिसका लक्ष्य मानवताकी समृद्धि है। वैज्ञानिक प्रगति और विकसित ज्ञानकी दिशामें हमारे समस्त प्रयत्नोंका लक्ष्य हो वास्तविक शक्ति अर्जित कर रखना। वास्तविक शक्ति वही है, जिसमें कुछ ठोस कल्याण कर सकनेकी क्षमता निहित है।

बेकनने कहा है—'मनुष्य उतना ही है, जितना वह जानता है।' परंतु बेकनसे भी पहले एक बहुत बड़ा जानकार सुकरात सब कुछ जानकर भी कहा करता था—'अपनेको जानो' और 'जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं जो कुछ जानता हूँ, वह यही है कि मैं कुछ नहीं जानता।'

तात्पर्य यह है कि ज्ञानका भाण्डार अक्षय और असीम है। टामस आर्नल्डके शब्दोंमें—'प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वस्तुकी भाँति वास्तविक ज्ञान आसानीसे प्राप्त की जानेवाली वस्तु नहीं है। उसके लिये उद्योग और उससे भी अधिक प्रार्थना आवश्यक है।'

ज्ञान और भक्तिमें इतना साम्य तो है ही कि दोनोंका पवित्र रूप एक समान लक्ष्यकी ओर ले जानेवाला है। अनातोले फ्रांसने ज्ञानमें निहित शक्ति-तत्त्वके समुचित प्रयोगको लक्ष्यमें रखकर ही कहा है—'ज्ञानको उचित रूपमें पचानेके विचारसे उसे अच्छी भूखके साथ निगला जाना चाहिये।' बर्टेण्ड रसेल-जैसे शान्ति-प्रेमी आज मानवताकी भावनासे अनुप्राणित होकर विश्वके नेताओंसे बुद्धिका समुचित प्रयोग किये जानेकी अपील करते हैं। परंतु लाल चीन तो आतङ्क बिठानेके लिये ही अणु-विस्फोटोंकी धमकियाँ दे रहा है। किसी भी कारणसे जब राष्ट्रोंके बीच विवेक और न्यायका अभाव है, तब क्या कहा जा सकता है कि कब कौन-सी चिनगारी घोर युद्धकी विभीषिका लाकर खड़ी कर देगी। विश्वविनाशकी विस्फोटक स्थितिके बीच व्यक्ति जबतक जो कुछ भी शान्ति पा सकता है, उसके लिये ज्ञानका सदुपयोग करता रहे और हाब्सके कथनका ध्यान रक्खे—'ज्ञान ही शक्ति है।'

करुणाकर टेर सुनो सत्वर !

मेरा दुख-दैन्य अनन्त प्रभो !
मेरी मानस पीड़ा अपार।
बहती रहती निशि-दिन अविरल
आँखोंसे आतुर अश्रु-धार॥

मैं रोता सुस्मृतिमें अविरत
करुणाकर ! टेर सुनो सत्वर।
ज्योतित कर दो अन्तर-प्रकोष्ठ
पावन भर प्रेम-प्रकाश प्रखर॥

पथके कणकण से लिपट-लिपट
पग हार चुके, थक चुकी साँस।
सब नष्ट हो चुका जीवन-बल,
प्राणोंमें पीड़ाका निवास॥

पद-वैभव-हास-हुलास नहीं
अब मेरे जीवनकी आशा।
चरणों में लीन रहूँ प्रतिपल,
मेरी आतुरतम अभिलाषा॥

खोलो खोलो करुणाके पट,
हे करुणाकर ! मैं हुआ श्रान्त।
पाकर प्रभु पावन दया-दृष्टि
हो सके शान्त, जीवन अशान्त॥

—श्री रा० प्र० द्विवेदी 'रामेश्वर'

शान्तिकी खोजमें भटकता समाजवाद

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री, साहित्यरत्न, बी० ए०)

समाजवाद आजके युगकी पुकार है और शान्ति आवश्यकता। शान्ति चाहे व्यक्तिगत हो या समाजगत, मूल्यवती है; किंतु उसके सम्बन्धमें बात करना एक फैशन बन गया है। व्यवहार-रूपमें उतारनेकी कोई चेष्टा ही नहीं करता। बड़े-बड़े सम्मेलन होते हैं, राष्ट्राध्यक्षोंकी विज्ञप्तियाँ भी शान्तिके ही गीत गाती हैं किंतु उन सम्मेलनोंपर किया गया अर्थनाश न शान्ति ला सकता है, न शान्तिका भावनात्मक स्थापन कर सकता है। हाँ, प्रचार अवश्य हो जाता है। राष्ट्रका प्रतिनिधित्व एक व्यक्ति करता है अर्थात् व्यष्टिमें समष्टिकी प्रतिष्ठा की जाती है किंतु उस व्यष्टिमें जिस गौरव-गरिमाकी अपेक्षा की जाती है उसका अभाव रहता है और परिणाम यह निकलता है कि वे प्रस्ताव—प्रस्तावमात्र रह जाते हैं। व्यक्ति विश्वका प्रतिनिधित्व कर सकता है, किंतु उसके लिये उदारचरित होना अनिवार्य है। पर ऐसा होता कहाँ है ? राजनीति, प्रेमनीतिसे हटकर केवल स्वार्थनीति या कूटनीति मात्र रह गयी है। स्वार्थान्ध व्यक्ति अपने संकीर्ण स्वत्वके लिये समूचे राष्ट्रको विनाशके कगारपर खड़ा कर देता है—युद्धकी भीषण ज्वालामें झोंक देता है। चीन तथा पाकिस्तानका आक्रमण और वियतनामका युद्ध हमारे सामने है। शान्तिका ढिंढोरा पीटनेवाले आज उसकी हत्या कर रहे हैं, निरीह जनताका प्राणनाश करनेपर उतारू हो रहे हैं। केवल अपने अहंकी तुष्टिके लिये अथवा विश्वको आतङ्कित करनेके लिये ! व्यक्तिवाद बुरा नहीं है; क्योंकि प्रत्येक प्राणी स्वतन्त्र व्यक्तित्व लेकर जन्मा है। व्यक्तिवादका निन्दनीय रूप स्वेच्छाचारी और संकीर्ण 'स्व' का है। तुलसीदासजी-जैसा स्वान्तःसुखायका दायरा यदि व्यक्तिवादमें रहता है तो वह शान्तिका घटक बनता है, अन्यथा क्षीण संवेगों और आवेशोंकी आँधीमें काँपता हुआ व्यक्तिवाद सारे समाजको अशान्त कर देता है। शान्तिके प्रतीक थे ऋषि, जिनके आदर्श थे—

'द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः० ।'
'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥'

—यह जिनका जीवन-दर्शन था, वे थे व्यक्तिवादमें समाजवादको प्रकाशित करनेवाले, जिनके सामने न केवल सम्राट् (समाजका सार्वभौम प्रतिनिधि) ही सिर झुकाता था वरं जिनके आश्रममें वनराजा और निरीह गौ एक ही घाटपर पानी पीते थे। वे थे समाजवादके सर्जक, पोषक और प्रहरी—जिनका अन्तर शान्ति, दया और परदुःखकातरताकी मूर्ति था, जिनका आत्मोद्धार ही देशोद्धार था।

शान्ति समाजकी समृद्धि है, स्वास्थ्य है। आजका समाजवाद उसे पानेकी चेष्टा करता है, देनेकी नहीं। हमारे सामने दोनों ही चित्र हैं। प्राचीन समाजवादका भी और आजके समाजवादका भी। दोनोंका लक्ष्य शान्ति और समृद्धि है, पर एकमें जीवनमूलक भावना है, दूसरेमें प्रदर्शन है; एकमें उपलब्धि है, दूसरेमें चित्रणमात्र।

समाजवाद आजके युगकी उपज नहीं है, इसके मूल रूप भारतकी स्मृति और समाज-व्यवस्थामें स्पष्ट वर्णित हैं। भूल वहींसे हुई, जहाँसे हमने अपनी सनातन व्यवस्थाको पुरानी कहकर हेय समझ लिया और नयेकी चमकमें हम चौंधिया गये। इस समाजवादके बदलते रूपने ही शान्तिका रूप विकृत कर दिया है। आज रह गया है वह समाजवाद, जिसका शव दुर्गन्ध मार रहा है। वह समाजवाद, जिसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका हनन किया जा रहा है जो किसी भी युगमें शान्ति-समृद्धिका प्रतीक नहीं हो सका। भारतके मूलभूत सिद्धान्त वास्तविक शान्ति और समृद्धिपरक समाजवादके प्रतीक रहे हैं, वे आज भी इस नये समाजवादकी भावनाओंसे कहीं बहुत ही आगे हैं।

व्यक्ति समाजका अङ्ग है, जितना साधक है उतना ही बाधक भी। यदि शान्तिका विधायक व्यक्ति है तो विनाशक भी व्यक्ति ही। एक युग था जब भारतमें निःस्पृह ब्राह्मणका शासन था, समाज-व्यवस्थाका नियमन स्मृतियाँ करती थीं। आज जिन घृणित मनोवृत्तियोंसे प्रेरित होकर व्यक्ति जघन्य कार्य करता है और जिन अपराधोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, उस समाज-संरचनामें शायद उनकी विरल कल्पना थी। जिसपर दावा यह है कि 'व्यक्ति आज विकसित हो रहा है, उस युगको इतिहासमें छोड़ आया है। आज उस कष्टकर और तमसाच्छन्न

पङ्गु व्यवस्थाकी चर्चा ही उपहासकी पात्र है ।' मेरा उन्हींसे प्रश्न है—'क्या इस व्यवस्थाने मानवको सुखी और शान्त जीवन दिया है ? क्या व्यक्तिगत स्वतन्त्रताने सामाजिक उच्छृङ्खलताको बढ़ावा नहीं दिया है ?'

यह नया समाज-शास्त्र खोखला है, एक कराह है इसमें, पर सुनता कौन है ? वर्णव्यवस्था अन्याय थी किंतु इस सुलझे समाजवादने व्यक्ति और व्यक्तिके बीच मिठास नहीं रहने दिया, मालिक और मजदूरके बीच खाईं डाल दी, परिणाम निकला हड़तालें, खून-खराबा, राष्ट्रिय उत्पादनमें ह्रास और असंख्य युनियनोंकी उत्पत्ति । जिसे हमारे यहाँ धर्म और सदाशयता माना गया, उसीको नियम बना दिया गया । नियम बनते ही अधिकार-भावना पनप गयी । अभीकी बात है, किसी एक संस्थानमें काम करनेवालोंको उसके मालिकके द्वारा समय-समयपर आर्थिक सहायता दी जाती थी और आज उसीको बोनसके नामसे लिया जाता है । सिद्धि एक है पर उसके साधन एक-दूसरेमें अन्तर डालनेवाले । पुत्रीको विवाहमें या विवाहके पश्चात् जो दिया जाता है वह हमारी आत्मीयताका मधुर फल है किंतु नियमके आधारपर पिताकी सम्पत्तिमें समान भागकी माँग करनेसे प्रतिद्वन्द्विता और परकीयताका भाव जग जायेगा। जिसमें हर तरहसे क्षति है ।

अधिक दिन नहीं हुए, किसानके यहाँ खेती पकनेपर सबको यथाश्रद्धा मिला करता था—नाई, मोची, बढ़ई, लोहार आदि सबको । सम्पत्तिपर सबका अधिकार था । उत्पत्ति सबमें वितरित होती थी, किंतु वह 'अधिकार' न होकर 'कर्तव्य' था । प्रत्येक वर्ग एक-दूसरेपर निर्भर था । शूद्र समाजका पैर होकर भी अङ्ग तो था ही, इसीलिये हाथको मुखसे, पैरोंको जंघासे कोई ईर्ष्या नहीं थी । सब एक-दूसरेसे गुँथे हुए थे । न किसीमें हीन-भावना थी, न किसीमें अभिजात-भावना । एक लोकोक्ति प्रचलित है 'बेटा तो पड़ोसीका ही अच्छा, छप्पर उठानेके ही काम आये' छप्पर उठानेसे लेकर विवाह-शादीमें आटा पीसने-तकके काममें सब एक-दूसरेका सहयोग करते थे । यन्त्रोंके अभावमें भी सहयोगका तन्त्र ऐसा जम रहा था कि सारा काम सहज सुकर ढंगसे चल रहा था । अमुकको अमुक काम नहीं करने दिया जाता था, पर इसका काम करनेके लिये कोई भी इन्कार नहीं करता था । कितना सामञ्जस्य और सौमनस्य था एक वर्गका दूसरेके लिये । व्यक्ति, व्यक्ति रहकर भी समाज था । कितनी शान्ति थी, सुख था और कितनी मधुर समृद्धि थी । उस समय समाजवाद मूर्तिमान् था और आज समाजवादका ढाँचा है—संज्ञाशून्य, खोखला । इसीलिये इस भटकते समाजवादमें शान्ति अलभ्य है ।

आजका समाजवाद निर्जीव समाजवाद है । यन्त्रोंके कोलाहलमें समाजकी शान्ति दब गयी है । इस अशान्तिके लिये अर्थकी संज्ञा जिसे दी जाती है अथवा विनिमयका माध्यम जो रहा है उसका भी कम महत्त्व नहीं । विनिमय-का माध्यम चल वस्तु ही हो सकती है । वह युग निस्संदेह सत्ययुग था जिस युगमें 'गोधन'की प्रतिष्ठा थी । वह युग था आर्ष-युग, जिसमें सर्वत्र शान्ति व्याप्त थी, गौ माता थी, ऋतम्भरा भी गौ थी तो कामधुक् भी धेनु ही । उस समाजमें व्यवस्था थी समर्थके हाथमें और शान्तिका जीवन्तरूप गौ भी रीढ़ । गौ सदा शान्तिप्रिय रही है । युद्धमें इसका उपयोग हो ही नहीं सका । माँकी तरह रक्षा अवश्य कर सकती है । माध्यम स्थिर नहीं रहता है । युग बदला और वाजिधन तथा गजधन आया । इसमें मनुष्यमें परिग्रहकी भावना पनपी; किंतु फिर भी सामाजिक शान्तिको आघात नहीं पहुँचा । वर्णाश्रम-व्यवस्था धर्म ही रही, पारस्परिक सहयोग कर्तव्य ही बना रहा और समाजमें सुख-शान्ति रही ।

व्यापारी वर्ग न्यायोचित सीमित लाभ लेकर भाग्यके सहारे पनपते रहे । विशुद्ध भोज्य पदार्थोंसे जनता नीरोग थी और भावनात्मक समानतासे सुखी; किंतु यह भी नहीं रहा । विनिमय सुवर्णके हाथोंमें आ गया और आज तो कागजके टुकड़ोंपर ही । ठीक है, इतनी बड़ी जनसंख्याके लिये दूसरा माध्यम इतना सस्ता नहीं हो सकता, किंतु इन भुरभुरी बालूके कणोंमें तो निलगात्र है, संघर्ष है, परिग्रह है । एक बार फिर भय-सभ्यता विश्वको निगलने जा रही है, पर आशा जग पड़ी है, विश्वास कहता है—इस अशान्ति-के पीछे शान्तिका पारावार उमड़ा आ रहा है । इस विलगाव-की घनघोर घटाओंके पीछे आत्मीयता और प्रेमका सूर्य चमकनेवाला है !

इस अर्थकी सर्वभक्षी भूखने भोज्य पदार्थोंको ही विषाक्त नहीं किया, प्रत्युत ओषधियोंको भी मिलावटसे दूषित कर दिया । किसका विश्वास करें ? सारी दुनियाका

एक ही लक्ष्य है—धन बटोरो, गला घोटकर या डाका डालकर, और इसी अर्थने अनर्थ कर दिया, समाजमें अशान्तिके बीज बो दिये। आज कितनी आत्महत्याएँ हो रही हैं, कितने व्यभिचारगृह बढ़ रहे हैं ? ये सब स्नायु-दौर्बल्यके चिह्न हैं। व्यक्तिकी रगोंमें तनाव आता है और वह संयम खो बैठता है। उसपर समाजका कोई अंकुश तो रहा नहीं और वह स्वयं उच्छृङ्खल होकर वासनाओंकी वेगवती धारामें बह रहा है। इसीलिये कह रहा है 'अर्थस्य सर्वे दासा नार्थो दासो हि कस्यचित्' बस, यहींसे होता है अनर्थोंका सूत्रपात।

वस्तुतः यदि हमें सच्चे समाजवादकी स्थापना करनी है तो स्मृतियोंमें निर्दिष्ट भावनाको अपनाना होगा, रूप चाहे कोई भी, कैसा भी रहे। उन पुरातन मूल्योंकी फिरसे प्रतिष्ठा करनी होगी। शान्ति-सम्मेलनके बजाय क्रियाशील तथा भावनात्मक एकताका मिठास व्यक्तिमें घोलना होगा, फिर समाजमें शान्ति दूरकी बात नहीं।

सहिष्णुता

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

उलझे शुष्ककेश, बढ़ा श्मश्रुजाल, शीतसे झुलसा काला पड़ा सर्वाङ्ग। देहका चर्म स्थान-स्थानसे चकत्तोंके रूपमें फट रहा है। पैरोंमें दो स्थानपर हिमदंशके घाव हैं और वे अभी भरे नहीं हैं। कौपीन और मैली कन्था, परिग्रहके नामपर एक कमण्डलु भी है और यात्रासहायिकाके रूपमें एक वन्यकाष्ठकी टेढ़ी बेडौल लकड़ी भी।

सुविस्तृत भाल, सघन बंक भ्रूमण्डल, पद्मदलायत अरुणाभ नेत्र, उन्नत नासिका, प्रतले अधरपुट, प्रलम्ब देह, प्रशस्त स्कन्ध एवं वक्ष, आजानु लम्बायमान भुजाएँ, दुर्बल कटिदेश—हिमपीड़ित, प्रसाधनविहीन, उपकरण-रहित भी वे ऐसे दीखते हैं कि कोई भी देखते ही उनके सम्मुख सहज मस्तक झुका देगा। यह दूसरी बात है कि इस निर्जन प्रदेशमें सृष्टिकर्ताके इस कला-नैपुण्यका कोई दर्शक ही नहीं है।

'मृत्योर्मामृतं गमय !' श्रुति अनेक बार श्रवणमें पड़ी थी; किंतु शब्दका कर्णविवरोंमें प्रवेश ही तो श्रवण नहीं है। चित्त जब किसी विशेष शब्दको ग्रहण करनेकी उपयुक्त स्थितिमें होता है, कर्णरन्ध्रमें शब्दके प्रवेशके साथ ही हृदयमें एक प्रकाश हो जाता है। अर्थका यह अद्भुत प्रकाश जब होता है—उसीको श्रवण संज्ञा दी है शास्त्रकारोंने। उस दिन उन्हें श्रुतिका श्रवण हुआ—ठीक श्रवण और अमृतत्वकी खोजमें घर-परिवार, सुख-सम्पत्ति, वैभव-विलास सब छूट गये।

पूरे तीन वर्ष हो गये उन्हें भटकते। सुना था कि हिमालय आत्मदर्शियोंका देश है। यहाँ आये तो किसीने बता दिया—'मंगोलियाके मरुस्थलमें कोई सिद्ध योगी हैं।' पैदल भटकते रहे और ऐसे भटकनेके साथ जो पीड़ा-यन्त्रणा, अभाव-अपमान अनिवार्य रूपसे प्राप्त होते हैं, सब प्राप्त होते रहे।

अपरिचित देश, अपरिचित भाषा—सभी कुछ तो अपरिचित था। न मार्गका ज्ञान और न पूछनेका साधन। अपने आप मौनव्रत चलता रहा। जब कोई अपनी भाषा समझे ही नहीं, बोलते किससे ? संकेत भी सदा समझे नहीं गये। समझ लेनेपर भी एक कंगाल भिक्षुक-

के संकेतका सर्वसाधारण कितना सम्मान करते हैं, आप क्या जानते नहीं। जिधर पैर उठा, चलते गये।

पैरोंमें छाले पड़े, बिवाइयाँ फटीं, घाव हुए; किंतु यह देह अतिशय निर्लज्ज है। सब संकट सह लेगा और सरकता रहेगा। प्रत्येक परिस्थितिके अनुरूप परिवर्तित होता रहेगा। पैरका चमड़ा इतना कड़ा हो गया क्रमशः कि काँटे भी उसमें चुभना कठिन। शरीरका वर्ण काला पड़ गया और चमड़ा मोटा हो गया।

अनेक-अनेक दिन व्रत हुए। अनेक बार प्याससे मूर्छा आयी। प्रारब्ध शेष हो तो मृत्यु आती नहीं। कोई-न-कोई निमित्त रक्षाका बन ही जाता है। उनके लिये भी निमित्त बनते रहे। कण्ठ सींचनेको जल तथा उदरकी ज्वालामें झोंक देनेको इतना ईंधन मिलता रहा कि शरीर चल रहा है।

बच्चे तो बच्चे ही हैं सभी देशोंके; किंतु अकारण ही उत्पीड़ित करनेवाले दुर्जनोंकी भी सर्वत्र बहुलता है। धूल और पत्थर मारकर जहाँ बार-बार सत्कृत होनेका अभ्यास हो गया, वहाँ समझमें न आनेवाले कर्कश शब्दोंका क्या महत्त्व था। वे कुत्सित गालियाँ हैं, जान भी लेते तो क्या बनना-बिगड़ना था। उनके देह-पर थूका भी गया और गंदगी भी फेंकी गयी अनेक बार। चार बार संदेहमें स्थानीय अधिकारियोंने पिटवाया तथा कई-कई दिन कारागारमें भी रक्खा।

जहाँ मनुष्योंका ही यह व्यवहार था, कुत्ते भूँकते हैं तो क्या विचित्र बात है। लेकिन उनके किसी सदस्यने कभी काटा नहीं। मच्छर, मक्खी, कीड़े—इनका जो स्वभाव है, उसे क्षमा कर देनेके अतिरिक्त उपाय भी क्या।

'अमृतत्व क्या है? कहाँ है वह? कैसे मिलेगा?' जब पिपासा तीव्र होती है, दूसरी ओर देखनेका अवकाश ही नहीं मिलता। दूसरे सब कष्ट अपने-आप उपेक्षणीय हो जाते हैं। वे न तपस्या कर रहे थे और न त्याग-तितिक्षामें उनकी निष्ठा थी। प्राणोंमें एक प्यास जाग उठी थी। उसे परितृप्त करनेके प्रयत्नमें लगे होनेसे देहकी ओर देखनेका अवकाश ही नहीं था।

'तू सहिष्णुता सीख।' इतने श्रम, इतने कष्ट-सहनके पश्चात् एक जनशून्य मरुस्थलमें अकस्मात् मिल गये एक दिगम्बर अवधूत। तेजोमय देह, जैसे शरत्कालीन चन्द्रपर धवल मेघका झीना आवरण पड़ा हो। परिचय न उन्होंने पूछा, न पूछनेका अवसर दिया। दो-तीन वाक्य कहकर मरुस्थलके अंधड़से जैसे अकस्मात् प्रकट हुए थे, वैसे ही उसमें अदृश्य हो गये। स्पष्ट संस्कृत भाषा थी उनकी—'अमृतत्व तेरे अन्तरमें ही है। अनित्य स्पर्शोंको सहन करना सीख, वह प्रकट होगा। भटकना व्यर्थ है।'

'भटकना व्यर्थ है!' यह आदेश स्वीकार करके वह लौट पड़ा था और हिमालयतक पहुँच गया था। कहाँ किधरसे आया, कौन-कौनसे प्रदेश पड़े मार्गमें, यह उसे स्वयं पता नहीं।

× × ×

'सहिष्णुता सीख!' उस अमानव-प्राय लगते अद्भुत अवधूतके शब्द मस्तिष्कमें गूँजते नहीं, घनाघात करते हैं। उसने क्या-क्या नहीं सहा है। 'अब और ऐसा क्या है, जो उसे सहना है? अभीतक उसे सहिष्णुता सीखना ही शेष है?'

जब उत्साह शिथिल होता है, समस्त श्रान्ति एक साथ दबा लेती है। इतने कष्ट, इतने अभाव, इतनी यन्त्रणामें कभी न हारनेवाला उसका चित्त आज हारने लगा है। 'अब इस हिमदेशमें अस्थियाँ गलती हों तो गल जायँ। इतना तो संतोष रहेगा कि पुण्यप्रदेशमें देहत्याग हुआ है।' वह एक हिमशिला-पर ही बैठा और फिर लुढ़क गया।

'वत्स !' अमृत-सिञ्चन करनेवाली स्निग्ध वाणी श्रवण-में पड़ी—'अमृतका पुत्र है तू । अमृतत्व तेरा स्वत्व है । उठ ! इस प्रकार पराजय स्वीकार करना तुझे शोभा नहीं देता ।'

'भगवन् !' उसने पड़े-पड़े ही नेत्र खोले और फिर हड़बड़ाकर उठा तथा चरणोंपर लुढ़क गया । पिंगल-वर्ण जटाएँ मस्तकसे पादतलतक लम्बायमान थीं, भस्म-भूषित देह था और नेत्रोंमें अद्भुत करुणा थी । इतनी ही वह एक झलकमें देख सका था ।

'उठ, समीप ही गुहा है । तुझे अभी उष्णता एवं आहारकी आवश्यकता है ।' सहारा देकर उन्होंने उठा दिया । वह उठकर खड़ा हो गया । चलनेकी शक्ति जान पड़ी उसे अपनेमें । उन अपरिचित कृपालुके पीछे उसे बहुत दूर नहीं जाना पड़ा ।

पर्वतके भीतर एक साधारण गुफा । उसमें सीधे खड़े होनेका अवकाश नहीं था । बैठकर ही भीतर जाना पड़ा । वहाँकी उष्णताने उसे सुख दिया । सम्पूर्ण गुफा काली हो गयी थी धुआँ लगते रहनेसे । भीतर पाषाणशिलाएँ अनेक स्थानोंपर उभड़ी थीं । एक धूनी थी मध्यमें और एक किसी हिमप्रदेशीय पशुका चर्म बिछा था ।

'वहाँ एक पार्श्वमें जलस्रोत है । तू ये कन्द ग्रहण कर ।' धूनीमेंसे मोटे-मोटे लम्बे गोल दो कन्द उन्होंने निकालकर बाहर रख दिये और बोले—'आहार करके विश्राम कर । मैं कल दिवसके प्रथम प्रहरमें आऊँगा ।'

उसने कन्द जलमें धो लिये । उसे लगा, इतना स्वादिष्ट भोजन जीवनमें पहली बार मिला है । उस चर्माम्बरपर सोया तो सम्पूर्ण रात्रि कैसे समाप्त हुई पता ही नहीं लगा । सूर्योदय होते ही नित्यकर्मसे निवृत्त होकर, गुफा स्वच्छ करके वह प्रतीक्षा कर रहा था अपने उन आतिथेयकी ।

'व्यक्तिके परिचयकी उत्कण्ठा व्यर्थ है !' आकर आसन स्वीकार करते ही उन महापुरुषने कहा—'व्यक्ति क्या ? एक चर्मावरणसे परिसीमतताका प्रतीयमान भ्रम, इसके पीछे मत पड़ ।'

'हिमप्रदेशमें तुझको बहुत अधिक ग्राम मिले हैं ।' तनिक रुककर वे बोले—'मरुस्थल प्रदेशमें भी जनपद हैं । इनके निवासी तपोधन नहीं हैं, यह तू जानता है ।'

'सहिष्णुता क्या ?' उसने अब सीधे पूछ लिया ।

'हिमप्रदेशीय निवासी शीतसहिष्णु हैं और उष्ण-देशीय ऊष्मासहिष्णु, किंतु हिम या ऊष्मासहिष्णु हो जाना तितिक्षा नहीं है ।' वे इस प्रकार बोलते जा रहे थे, जैसे प्रश्न उन्होंने सुना ही नहीं—'तुम्हारे पूर्वज तितिक्षा समझते थे । वानप्रस्थाश्रमी शीतकालमें शीतल जलमें आकण्ठमग्न दिवस व्यतीत करे, ग्रीष्ममें संतप्त भूमिपर बैठकर पञ्चाग्नि सेवन करे और वर्षामें मेघोंको अपना निरन्तर मूर्धाभिषेक करने दे ।'

'तितिक्षा इस जनने जानबूझकर तो नहीं की; किंतु······ ।' उसने कुछ कहनेका प्रयत्न किया; लेकिन फिर चुप हो गया ।

'तितिक्षा तप है । तप तेज एवं सिद्धिका जनक है । परंतु तप अन्तःकरणको निर्वासन नहीं करता । विक्षेपका निवारण तपका कार्य नहीं ।' वे बोलते जा रहे थे—'तप महासिद्ध बना दे सकता है, अमृतपदकी प्राप्ति नहीं करा सकता । यह कार्य सहिष्णुता करती है ।'

'सहिष्णुता ?' वह चौंका । उसे अब लगा कि उसने अबतक जो कुछ सहा है, वह तितिक्षा तो है; किंतु सहिष्णुता ? इस सहिष्णुताको तो वह अभीतक समझ ही नहीं पाया है ।

'तितिक्षा केवल एक पार्श्व है सहिष्णुताका ।' उन महापुरुषने इस बार तनिक दृष्टि उठाकर उसकी ओर देखा था—'मात्रास्पर्श समझता है ? रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श—ये तन्मात्राएँ तो तू जानता ही है । तपस्वी अथवा तितिक्षु इनमें अप्रियका—दुःखका, प्रतिकूलवेदनाका आह्वान करता है । उसके उपयुक्त परिस्थिति प्रस्तुत करके उसे सहता है । अधिकांश तपस्वी शब्द और स्पर्शकी प्रतिकूलताको सह लेना ही तपकी सम्पूर्णता मानते हैं । कठोर स्पर्श, अत्यन्त शीतल या अत्यन्त ऊष्मामें शरीरको डाले रहना तथा निन्दा—अपमानको सह लेना—इतना ही तो तितिक्षाका क्षेत्र नहीं है । रूप, रस और गन्ध—इनका प्रतिकूल स्पर्श भी तितिक्षाके क्षेत्रमें ही है ।'

'अब सहिष्णुता पता नहीं क्या होगी ?' वह बोला तो नहीं; किंतु उसके चित्तमें प्रबल मन्थन चलने लगा । ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच ही हैं और पाँचोंके प्रतिकूल विषयोंको सह लेनेकी बात आ गयी । मानापमान शब्द या चेष्टा-जन्य ही तो होगा । इतना सब तितिक्षा है, तपस्या है और यह सहिष्णुताका केवल एक पार्श्व है—अद्भुत बात लगती है उसे यह । जो अपरिचित महापुरुष उसके सम्मुख बैठे हैं, उन्होंने अकस्मात् बोलना बंद कर दिया है । उनके नेत्र बंद हो गये हैं । लगता है कि वे ध्यानावस्थित हो गये हैं । एक-एक क्षण उसे भारी लग रहा है । वह अत्यन्त उत्सुक हो उठा है ।

'प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्, अनुकूलवेदनीयं सुखम्' मेंसे तू आधे भागको भूल क्यों रहा है ? तन्मात्राओंका स्पर्श केवल दुःख ही नहीं देता, सुख भी देता है । ये स्पर्शज सुख-दुःख दोनों अनित्य हैं । दोनों आने-जानेवाले हैं, दोनोंको अविचलित अन्तःकरणसे सह लेना सहिष्णुता है ।' सम्भवतः उसके अन्तर्द्वन्द्वको उन महापुरुषने जान लिया था । इसलिये इस बार उन्होंने सम्पूर्ण बात एक साथ ही कह दी—'केवल दुःख ही व्यथा नहीं देता । सुख भी एक व्यथा ही है । वह भी मनको उन्मथित करके उद्विग्न करता है । हर्षविशेषरहित, उद्वेगहीन स्थिर भावसे सुखको झेल लेनेवाला साधक क्या तुझको किसी घोरतर तितिक्षु—तपस्वीसे कम महत्त्वपूर्ण लगता है ?'

'ओह !' दीर्घ निःश्वास निकल गया उसके मुखसे । वह इतना चौंक गया था कि उसकी कल्पना तक करना कठिन है । तपस्वी स्थिर, नीरव, एकटक देख रहे थे उसकी ओर और उसने मस्तक झुका लिया था ।

'गुरुदेव !' सहसा उसने दोनों चरण पकड़ लिये महापुरुषके ।

'नहीं !' उन्होंने उसे स्नेहपूर्वक उठाया । 'वज्रयानका साधक अनङ्गवज्र चाहे जितना दीर्घायु एवं प्रज्ञापारमिता भगवतीका कृपापात्र हो, तेरा पथ-दर्शक नहीं हो सकता । तू हमारे कुलका नहीं है । अपने कुलमें, अपने अधिकारानुरूप पथसे ही साधककी प्रगति होती है । भगवान् पद्मपाणिने आदेश दिया था कि उनके इस दिव्यदेशमें आये सहज तापसको मैं अपनी वाणीका आतिथ्य देकर अर्चन करूँ । मैंने यह आतिथ्यका अल्प प्रयास किया है ।'

'आप अब पधारें !' उसे अवरुद्ध-कण्ठ देखकर महापुरुषने ही कहा—'आपने अनायास तितिक्षाको परिपूर्ण कर दिया है । अब अपने गृहको लौटें । सुखको सहन करनेका अभ्यास करें । सहिष्णुता जिस दिन परिपूर्ण होगी अमृतत्व तो आपका स्वत्व है ही । समदुःख-सुख धीर पुरुष सहज अमृतत्वका स्वरूप है ।'

चिन्तासे बचिये !

(लेखक—श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)

एक प्रसिद्ध उक्ति है—

चिंता ज्वाल, शरीर बन, दावा लगि-लगि जाय।
प्रकट धुआँ दीखे नहीं, उर अंतर धुँधियाय॥

चिन्ता मनसे सम्बन्धित एक विकार है, जिसकी उत्पत्ति विशेष रूपसे मनोरम विषयके वियोगके कारण होती है। चिन्ताकी शक्ति अत्यन्त प्रबल होती है। इसका वासस्थान हृदय है—जहाँ मनका भी अधिष्ठान कहा गया है; अतएव जिस मनका यह विषय है, उसीके संनिकट इसका वास भी है। तो फिर इस चिन्तारूपी आँधीके झकोरेसे मन क्यों न कम्पायमान हो ? इस मनोवेदशाके और भी बहुत-से कारण हो सकते हैं—बन्धु-वियोग, सामाजिक अप्रतिष्ठा, धन-हानि या मनकी अत्यन्त प्रिय वस्तुओं—फिर वे जीवित प्राणीवर्गकी हों या निर्जीव वर्गकी—से सम्बन्ध-विच्छेद इत्यादि।

चिन्तित करनेवाली मनोदशाका प्रभाव प्रथम मानसिक ही हुआ करता है, पर जैसे-जैसे चिन्ताका असर गम्भीरसे गम्भीरतर होता जाता है, वैसे-ही-वैसे उसके प्रभावक्षेत्रमें सम्पूर्ण शरीर आ जाता है। सम्पूर्ण शरीरके चिन्ताकी आगमें झुलसनेके पश्चात् शरीरके बाह्य और आभ्यन्तर सभी यन्त्रोंके पोषणकार्यमें रत जीवनरस सूख जाता है। ऐसी अवस्थामें तरह-तरहकी शारीरिक व्याधियोंके आक्रमणसे चिन्तातुर व्यक्ति नत होने लगता है। शोकातिसार (आमाशय नामक शरीरके मुख्य अन्तर्यन्त्रके चिन्तासे आक्रमित होनेके कारण), शोकज्वर (कफाशय और वाताशयके प्रभावित होनेसे) और शोकशोष (शरीरके पोषणकी क्रियामें रत अनेक यन्त्रोंके आक्रान्त होनेके बाद हृदय और यकृत्—इन दो आशयोंके प्रभावित होनेसे) इत्यादि दीर्घकालतक शरीरपर अपना प्रभाव रखनेवाले रोग मनुष्यको कष्ट देने लगते हैं। उपर्युक्त लोकोक्तिमें इसी कारण कहा गया है कि जैसे वनमें दावानल नामकी अग्नि* फैलकर उसे भस्मीभूत कर डालनेमें समर्थ है, उसी प्रकार चिन्तारूपी अग्निसे शरीर जलता रहता है, पर इस अग्निके जलनेपर भी शरीरमें बाहरसे कुछ विशेष मालूम नहीं पड़ता, किंतु भीतर हृदयमें उसकी लपट और धुआँ उठता रहता है।

चैनिंग नामक एक विदेशी विद्वान्ने कहा है कि चिन्ता एक प्रकारसे मानसिक कायरता है, जो जीवनको जहरीला बना डालती है। सचमुच चिन्ताके द्वारा विषाक्त शरीर शीघ्र पनप नहीं सकता। कहते हैं कि शयन या निद्रा उस संजीवनीके तुल्य है, जिसके स्पर्शसे प्राणी नवजीवन प्राप्त करता रहता है; पर अत्यन्त शोकातुर व्यक्ति तो नींदकी दशामें भी अपने हृदयमें एक बोझ-सा अनुभव करता है और जागनेपर वह बोझ विशेष भारयुक्त मालूम होने लगता है। प्रायः सभी विज्ञजन यह भलीभाँति जानते हैं कि अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंके बलपर यदि इस संसारमें विभिन्न प्रकारके विकास-कार्य करने हैं और सुखमय जीवनकी ओर अग्रसर होना है तो इस चिन्तारूपी राक्षसीको अपने तन और मनसे दूर ही कर डालना श्रेयस्कर होगा। इस कार्यके लिये प्रथम मनकी तहमें प्रवेशकर अपने विवेकके द्वारा चिन्ताके मूल

---

* अग्निके मुख्य तीन भेद हैं—शरीरमें 'जठराग्नि', वनमें 'दावानल' और समुद्रके जलमें 'बड़वानल' नामक अग्निकी गति होती है।

कारणको जानना और फिर उस कारणको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यदि कारण सांसारिक है और उसे दूर करना सामर्थ्यके भीतर है तब तो कोई बात नहीं—उसे दूर कर ही डालना चाहिये; किंतु यदि वह मनुष्यकी शक्तिसे बाहरकी बात है तो फिर प्रभुका स्मरण कर उन्हींकी आनन्ददायिनी छायाकी आशामें आगेके विकास-कार्यमें लग धीरे-धीरे मनको चिन्ताके भारसे मुक्त कर डालना चाहिये—तभी शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बना रह सकता है। स्वस्थ रहकर ही इहलौकिक और पारलौकिक साधनमें प्राणी जुट सकता है। ऊपरकी उक्तिमें चिन्ताके प्रभावसे प्रभावित मनकी दशाका दिग्दर्शन मात्र कराकर उक्तिके द्वितीय चरणमें 'दावा लगि-लगि जाय' कह मानसिक रोगोंके धीरे-धीरे शरीरमें प्रवेश, तीसरे चरणमें 'प्रकट धुआँ दीखे नहीं' कहकर रोगके गुप्त लक्षणकी ओर संकेत तथा 'उर अंतर धुँधियाय' कह चौथे चरणमें रोगके लक्षणके वासस्थानकी ओर इङ्गित कर दिया गया है।

किसी कविने चिन्ताकी उत्कर्षता दिखानेके लिये कहा है—

चिन्ता चितासमानास्ति विन्दुमात्रं विशेषतः।

आशय यह है कि चिन्ता और चितामें केवल एक बिन्दुका ही भेद है, नहीं तो दोनों सम हैं; बल्कि चिताकी अपेक्षा चिन्ता और भी विशेष कष्टकर है। इसी मौकेसे सम्बन्धित एक और प्राचीन संस्कृत उक्ति है—

चिताचिन्तयोर्मध्ये चिन्ता एव बलीयसी।
चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति जीवितम्॥

भावार्थ यह कि चिता और चिन्ताकी तुलना करनेपर चिन्ता ही विशेष बलवती जँचती है; क्योंकि चिता तो निर्जीव प्राणीको ही जलाती है, पर चिन्ता तो जीवितको ही जलाती रहती है। सृष्टिके आदिसे अबतक मनुष्यकी जितनी हानि इस चिन्तासे हुई है, उतनी और किसी कारणसे नहीं हुई है। इसके कारण मनुष्यकी संतुलित बुद्धि इस प्रकार पथभ्रष्ट हो जाती है कि उसकी कल्पनातक नहीं की जा सकती। इसीने बड़े-बड़े बुद्धिवैभवपूर्ण पण्डितोंको मूर्ख बना डाला, अपनी रणधीरताके लिये विख्यात जनोंको कायर बना दिया, उत्साहसे भरपूर मानसवालेको ऐसा निरुत्साहित कर दिया कि उनकी दुनिया ही सूनी हो गयी तथा जिन्होंने बड़ी-बड़ी आशाओंके अवलम्बनसे किसी महान् कार्यका श्रीगणेश किया था, उनकी आशाओंपर एकदम इसी चिन्ताने पानी फेर डाला।

मानव-शरीरमें इसके प्रवेशके कई मार्ग हैं। आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व जब महाभारतका युद्ध छिड़ा था, उस समय रणविद्याके महान् आचार्य गुरु द्रोणको, सेनापतिपदसे, घमासान युद्धक्षेत्रमें ही इसी चिन्ता राक्षसीने ही मूर्च्छित कर उनके मुखसे 'हा पुत्र !....' का आर्त्तनाद करवाकर प्राणहरण कर लिया था। वस्तुतः शोक है क्या ? यह शरीररूपी वृक्षके अनेक फलोंमेंसे एक फल है। लिखा है—

रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च।
आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम्॥

यानी रोग, शोक (चिन्ता), परिताप (कम्प और उष्णता इत्यादि रोगका एक भेद), बन्धन और व्यसन (शराब, दुराचारिता एवं जुए आदि दुर्गुण)—ये सभी शरीररूपी वृक्षके फल हैं।

मनसुख-विरह-शतक

(रचयिता—श्रीजसवंतजी रघुवंशी)

[अङ्क ९, पृष्ठ ११९३ से आगे]

अष्टम तरंग

प्रभु-स्तवन

(९१)

कंस-केशी-कंदन सुखपुंज,
कृष्ण, केशव हे कलिमलकदन !
कल्पतरु कलित कलाके कुंज,
कष्टहारी करुणाके सदन ॥
कार्यके कारण, कर्ता कर्म,
कालके काल, कृपाकी कोर ।
करो, करुणामय करुणासिन्धु,
कृपाकर कलि-क्लेशोंकी ओर ॥
कलामय करा-कराके कथा-
कीर्तनका कलिहारी गान ।
कर्ण-कुहरोंको करो कृतार्थ—
कमल-कर करें सदा कल्यान ॥
कलाधर कल्मष कोटि, करोड़—
करें कातर कर क्रोध कराल ।
कल्पना कविताके कल्लोल—
करोंमें लो करुणा करवाल ॥
मनसुखा भैयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(९२)

मदनमोहन माधव, मनहरण,
तरण-तारण दुखहरण ललाम ।
वेणुधर गिरधर नटवर मधुर,
चक्रधर दामोदर सुखधाम ॥
ब्रजेश्वर ब्रजपति ब्रजके प्राण—
त्राण ब्रजजीवनके, ब्रजराज ।
रसेश्वर रासविहारी रसिक-
शिरोमणि रासेश्वर रसराज ॥
मुरारी मदमोचन मधुरेश,
मधुप, मनके मधुमय मकरन्द ।
सलौने मुरलीधर, चितचोर,
विहारी माखनचोर मुकुन्द ॥
अच्युतम्, नारायण, वसुदेव
श्रीमतीलक्ष्मी-पति श्रीराम ।
राम राघव रघुपति रघुराज
रमापति राधावर घनश्याम ॥
मनसुखा भैयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(९३)

ओम् तत् सत् पुरुषोत्तम पूर्ण,
विनायक सिद्ध बुद्ध गोविन्द ।
सत्य सविता रवि पावक शक्ति—
अमृतमय अनुपम आनदकन्द ॥
विष्णु विधि शेष महेश सुरेश,
विधायक व्यापक अजर अछेद ।
भुवनपति, अमर, अनन्त अनादि—
सच्चिदानन्द अखण्ड अभेद ॥
विश्वपति विश्वरूप विभु प्रभो !
विश्वके पालक पोषक काल ।
विश्वव्यापक हे विश्वाधार—
विश्वजित् विश्वेश्वर प्रतिपाल ॥
सनातन ईश्वर अज, अनवद्य,
पूज्य वन्दित जग एक त्वमेव ।
जयति जय अकाल निर्भय, आत्म-
लिंग शिव जगदीश्वर जगदेव ॥
मनसुखा भयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(९४)

नटेश्वर नँदनन्दन नटराज,
ब्रजनिधे गोपीपति गोपेश ।

व्रजपते व्रजभूषण व्रजरूप
व्रजविहारी व्रजराज व्रजेश ॥
यशोदासुवन देवकीलाल,
सखा ग्वालोंके प्राणाधार ।
कन्हैया कालीनाग नथैया,
छैया मैयाके सुकुमार ॥
रचैया रास, चरैया गऊ,
हरैया सुरपतिका अभिमान ।
बसैया व्रजके प्यारे कृष्ण—
बजैया वंशीके भगवान ॥
चुरैया मन, छलवैया प्राण,
बचैया व्रजके हे सुखकन्द ।
चरणमें विनयावनत प्रणाम—
जयति जय वृन्दावन-व्रजचन्द ॥
मनसुखा भैयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(९५)

जानकीजीवन श्रीरघुवीर,
रुक्मिणीपते राधिकाराध्य ।
कंस-विध्वंसक निशाचरारि—
द्वारिकानाथ सिद्धिके साध्य ॥
देवकीनन्दन यदुपति विमल,
केसिहा कंस धेनुकारिष्ट ।
धनुर्धर रामचन्द्र रघुवंश-
शिरोमणि राघव राम वरिष्ट ॥
रघुपते रावणारि रघुनाथ,
जानकीवल्लभ हनुमन्तेश ।
शंखधर श्रीपति श्रीविधि श्याम,
द्रौपदीरक्षक हे भुवनेश ॥
जयति जय गोकुलेश लोकेश—
पतितपावन कृपालु कमलेश ।
पद्मलोचन कामोद अनंग,
दयामय दयानिधे हृदयेश ॥
मनसुखा भैयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(९६)

भास्करपति त्रिभुवनपति, हरी,
भूमिपति जगत्पते जगदीश ।
गर्वमोचन, गोवर्धननाथ,
गरुड़गामी गरुड़ध्वज ईश ॥
कंसरिपु दैत्यशत्रु प्राणेश,
जनार्दन जयति प्रणतजन-बन्धु ।
विश्वमय विश्वनाथ भयहरण,
भक्तजन-वत्सल करुणासिन्धु ॥
दीनबन्धू गोलोकाधीश,
अधम-उद्धारक नन्दकुमार ।
चक्र-पाणे मधुकैटभ-शत्रु—
त्रिलोचन चन्द्रमौलि सुखसार ॥
चन्द्रशेखर गंगाधर शंभु,
उमापति भव त्रिपुरारि महेश ।
पशुपते सदानन्द परमात्म-
पूर्णतम शक्तिरूप परमेश ॥
मनसुखा भैयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(९७)

पूर्ण आनन्द सुधांशु गिरीश,
यशोवर पद्मनाभ प्रतिपाल ।
इन्दिरावर मायापति ब्रह्म
वरद श्रीवद्रीनाथ विशाल ॥
शान्त-आकार पुण्डरीकाक्ष
शेषशायी नीलाभ शुभेश ।
पीत-पट-धर मुरलीधर रसिक
राधिकारंजन रमण रमेश ॥
जयति जय हृषीकेश गुणपुञ्ज—
गुणार्णव गुडाकेश गुणसदन ।
विमल बनमाली अम्बुजनयन
हरण मन कोटिकोटि-शत मदन ॥

हृदयकी गति, प्राणोंके प्राण,
स्वरोंके स्वर, वाणीके बोल ।
उषाके अरुण, साँझके मिलन,
धैर्यके धीरज अडिग अडोल ॥
मनसुखा भैयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(९८)

वेदकी ऋचा, ऋचाके छन्द,
छन्दके भाव, भावकी भक्ति ।
भक्तिके ध्येय, ध्येयके गेय,
गेयके नेह, नेहकी शक्ति ॥
सुमनकी सुरभि, सुरभिके स्वाँस,
स्वाँसके प्राण, प्राणके तार ।
तारके सूत्रधार आधार,
प्रकृतिकी गतिके शुचि करतार ॥
ज्ञानके विषय, विषयके सार,
सारके तत्त्व, तत्त्वके रूप ।
रूपके राग, रागके भोग,
भोगके मोह, विछोह अनूप ॥
योगकी रीति, रीतिके साध्य,
साध्यके साधन सत्यं शिवम् ।
नियतिके निर्माता, निर्लेप—
नियमके नियमन सुन्दर शुभम् ॥
मनसुखा भैयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(९९)

कामकी आग, क्रोधकी ज्वाल,
लोभकी लुभन, मोहकी चुभन ।
घृणाकी गन्ध, द्वेषका ताप,
अहंका भय, मत्सरकी जलन ॥
चाल छलकी, स्वारथकी बात,
झूठका साथ, कपटकी घात ।
विषयकी राति, भोगोंके स्वाद,
वासनाओंके कटु आघात ॥
नियमका भंग, पापका संग,
ढोंगके भेष, कलहकी बान ।
विरोधी भाव, अपूर्ण सुझाव,
बेरुखे बोल, बेसुरी तान ॥
अहैतुक दया भावसे विभो !—
मिटाया सब अबतक जिस तौर ।
हटाना नहीं प्रेमकी बाँह—
सहारा नहीं मुझे कुछ और ॥
मनसुखा भैयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(१००)

निराश्रय, दीन, निपट निरुपाय,
निलम्बित, निश्चित निरावलम्ब ।
पड़ा हूँ भवसागरमें कृष्ण !
उबारो देकर करावलम्ब ॥
न उरसे पलभर भी हों दूर
तुम्हारे नील सरोरुह चरण ।
न क्षणभर पड़े हृदयको चैन
भूलकर तुमको तारणतरण ॥
तुम्हारे प्रेमामृतमें पगे—
श्वास, कर प्राण तुम्हींको वरण ।
निरन्तर करें बने मदहोश
तुम्हारे मधुर नाममें रमण ॥
प्राणमें प्रणतपाल प्राणेश,
प्राणवल्लभ ओ मेरे करुण ! ।
युगल छबि मधुरा सबमें छकीं,
उमंगें लहरें हर क्षण तरुण ॥
मनसुखा भैयाके गोपाल,
गोपिकावल्लभ राधारमण ।
बरसती रहे कृपाकी घटा—
सदा ऐसे ही अशरणशरण ॥

(समाप्त)

दो भक्तोंके प्रिय भजन

श्रीगोपालबाबाका प्रिय भजन

वीतराग तपोनिष्ठ श्रीभगवन्नामामृत-रसिक श्रीगोपाल बाबा अभी हालमें ही एक बहुत बड़े महात्मा हो चुके हैं। आपका शरीर गुजराती था और आप मेड़ाघाट (जब्बलपुर) के महात्मा श्रीरामस्नेहीजीके प्रिय शिष्य थे। आपका नामानुराग एवं संकीर्तनप्रेम अटूट था। देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें आपने संकीर्तनका प्रचार-प्रसार किया और भक्तिका रस बरसाया। अन्तिम दिनों आप काठमाण्डू (नेपाल) में पशुपतिनाथ और गुह्येश्वरीके दर्शनोंके लिये आये थे और वहीं शरीर त्यागकर समाधि ली। आपके बनाये अनेक भजन हैं, जिनमेंसे उनका एक परमप्रिय भजन नीचे दिया जा रहा है।

खातिर कर ले नई गुजरिया,
रसिया ठाड़ो तेरे द्वार ॥ रसिया० ॥
ये रसिया तेरे नित्य न आवै
प्रेम होय तब दरसन पावै।
अधरामृतको भोग लगावै
कर मेहमानी अब मत चूके,
जीवन है दिन चार ॥ खातिर० ॥
हिरदेकी चौकी कर हेली
नेहकी चन्दन चरच नवेली।
दीक्षा ले बन जइयो चेली,
पुतरिन पलँग बिछाय
पलककी कर ले बंद किवाड़ ॥ खातिर० ॥
जो कछु रसिया कहै सो करियो
सास ननदको डर परिहरियो।
सोलह कर बत्तीस पहिरियो
कर ले दान सूमकी सम्पत
मन भरि मोद अपार ॥ खातिर० ॥
सब सों तोड़ नेहकी डोरी
जमना पार उतर चल गोरी।
निधड़क खेलो फरियो होरी
श्याम रंग चढ़ जाय जा दिना
हो जाय बेड़ा पार ॥ खातिर० ॥

श्रीडूंगरसीदासजीका प्रिय भजन

रतनगढ़ (बीकानेर) निवासी श्रीडूंगरमलजी लोहिया एक बड़े ही सरल आस्तिक पुरुष थे। इनका कारोबार तिनसुकिया (आसाम) में था, परंतु ये सच्चे भक्तिभावसे अपना जीवन-यापन करते रहे। गौ-ब्राह्मणोंके प्रति इनमें अटूट श्रद्धा थी। सत्संग, साधुसेवन और भजन ही आपका प्राण था। रतनगढ़में पूज्य श्रीभाईजीके सत्संगमें ये प्रायः निम्नलिखित भजन भावविभोर होकर करतालपर गाया करते थे। जीवनके अन्तिम दिनोंमें ये काशीमें विश्वनाथ-अन्नपूर्णाके सांनिध्यमें रहने लगे थे और सदाव्रत चलाया करते थे। वहीं हरिस्मरणपूर्वक आपने शरीर त्याग किया।

मन तू क्यों पछतावै रे।
सिरपर श्रीगोपाल बेड़ा पार लगावै रे ॥ मन०॥
निज करनीको याद करे जब जिया घबरावै रे।
प्रभुजीकी महिमा सुन-सुन मनमें धीरज आवै रे ॥मन०॥
जो कोई अनन्य मनसे हरिको ध्यान लगावै रे।
उसके घरको योग-क्षेम हरि आप निभावै रे ॥मन०॥
जो मेरे अपराध गिनो तो (प्रभु) अंत न आवै रे।
ऐसे दीनदयाल चित्तपर एक न लावै रे ॥मन०॥
शरणागतकी लाज तो सब ही ने आवै रे।
वो तीन लोकको नाथ लाज मेरी नहीं गमावै रे ॥मन०॥
पतित उधारन बिरद आपको बेद बतावै रे।
मोय गरीबके काज आज वे तुरत सिधावै रे ॥मन०॥
महिमा अपरम्पार तो सुर-नर-मुनि गावै रे।
ऐसे नन्दकिशोर भगतकी त्रास मिटावै रे ॥मन०॥
वे हैं रमानिवास भगतकी ओड़ निभावै रे।
तू मत होय उदास कृष्णको दास कहावै रे ॥मन०॥

रविशंकरके पुनर्जन्मका वृत्तान्त

(लेखक—श्रीप्रकाशजी परिमल एम्० ए०)

कहते हैं कि कन्नौजके छिपट्टी जिलेमें १८ जनवरी १९५१ ई०को श्रीजागेश्वरप्रसाद नाईके छःवर्षीय पुत्र मुन्नाको खेलते समय दो हत्यारे पड़ोसियोंने जबर्दस्ती अलग ले जाकर चाकूसे निर्दयतापूर्वक मार डाला। कहा जाता है कि मुन्ना श्रीजागेश्वरप्रसाद नाईका इकलौता पुत्र था और हत्यारोंद्वारा उसके इस प्रकार मारे जानेका कारण श्रीजागेश्वरप्रसाद नाईके पास काफी सम्पत्तिका होना था। मुन्नाके समाप्त हो जानेके पश्चात् श्रीजागेश्वरप्रसादका कोई कानूनी वारिस नहीं रह जाता था और ये हत्यारे ऐसी अवस्थामें उनकी सम्पत्तिपर अपना अधिकार जमा सकते थे। कहा जाता है कि ये हत्यारे श्रीजागेश्वरप्रसादके मित्रोंमेंसे थे और इनमेंसे एक उनका सजातीय नाई था तथा दूसरा धोबी।

जिन बच्चोंने इन दोनों व्यक्तियोंको मुन्नाको ले जाते हुए देखा था उनकी गवाहीपर इनको पकड़ लिया गया और इनमेंसे एकने अपराध स्वीकार भी कर लिया; किंतु अन्य कोई गवाह न होनेसे मामला खारिज कर दिया गया और हत्यारोंको छोड़ दिया गया। मुन्नाका कटा हुआ सिर और कपड़े श्रीजागेश्वरप्रसादद्वारा पहचान भी लिये गये थे।

इसके कुछ महीने बाद श्रीजागेश्वरप्रसादको सूचना मिली कि एक लड़का अपने आपको छिपट्टी जिलेका रहनेवाला तथा वहाँ हत्यारोंद्वारा मारा गया श्रीजागेश्वरप्रसादका पुत्र बताता है। रविशंकर नामका यह लड़का हत्यारोंके नाम, हत्याकाण्डके स्थान तथा उस सम्बन्धमें घटी घटनाओंकी विस्तृत जानकारी देने लगा। रविशंकर अपने माँ-बापसे भी पूर्वजन्ममें अपनेद्वारा काममें लाये जानेवाले खिलौनोंके लिये भी बार-बार आग्रह करता रहता था। उसके बाद जब लड़का पाँच सालका हुआ तो पूर्वजन्ममें की गयी उसकी हत्याकी विस्तृत जानकारी उसके अध्यापकद्वारा अपनी डायरीमें अङ्कित की गयी।

जब श्रीजागेश्वरप्रसादने इस सम्बन्धमें सुना तो वे ३० जुलाई १९५५ को बालकके पिता श्रीबाबूराम गुप्ताके घर पूरी जानकारी प्राप्त करनेके लिये आये। उनके इस प्रकार वहाँ आ जानेसे श्रीगुप्ता अत्यन्त चिन्तित हो गये। उन्हें डर था कि कहीं श्रीजागेश्वरप्रसादद्वारा उनका लड़का उनसे छीन न लिया जाय। इसलिये वे श्रीजागेश्वरप्रसादसे बातचीत करनेके लिये भी राजी न हुए। फलतः श्रीजागेश्वरप्रसादको किसी प्रकार खुद ही मिन्नत करके रविशंकरकी माताजीसे मिलना पड़ा। इन्होंने इनको लड़केसे मिलनेकी इजाजत दे दी। श्रीजागेश्वरप्रसादके कथनानुसार लड़केने कुछ ही समयकी बातचीतके पश्चात् उन्हें पूर्वजन्मके पिताके रूपमें पहचान लिया और मुन्नाके जीवनसे सम्बन्धित कुछ अन्य घटनाएँ भी बतलायीं।

उसके बाद रविशंकरके परिवारवालोंद्वारा बालकको श्रीजागेश्वरप्रसादके यहाँ छिपट्टी जिलेवाले मकानमें पूर्वजन्म-सम्बन्धी घटनाओंके अभिज्ञानके लिये ले जाया गया। वहाँ जानेपर बालकने मुन्नाके जीवनसे सम्बन्धित अनेक वस्तुओंको पहचाना तथा स्थान बताये।

लेकिन तदनन्तर श्रीगुप्ताद्वारा इस सम्बन्धमें कोई बातचीत करनेसे ही बालकको मना कर दिया गया तथा बालकद्वारा यदा-कदा पूर्वजन्म-सम्बन्धी कोई बयान दिये जानेपर उसे पीट भी दिया जाता था। इस तरह बालकके मनमें यह भय बैठा दिया गया कि यदि वह पूर्वजन्मसे सम्बन्धित कोई बात जब कभी भी करेगा तभी उसे पीटा जायगा। फलतः बालक उन घटनाओंके सम्बन्धमें बोलनेसे स्वभावतः हिचकिचाने लगा और शनैः-शनैः उन्हें भूलनेकी कोशिश भी करने लगा। इसी बीच बालकको श्रीगुप्ताद्वारा एक सालके लिये किसी सम्बन्धीके यहाँ जिलेसे दूर भेज दिया गया और

दुर्भाग्यवश उसके कुछ ही समय बाद श्रीगुप्ताका देहावसान भी हो गया।

रविशंकरके जीवनमें उसके पूर्वजन्मसे सम्बन्धित एक और महत्त्वपूर्ण भय देखनेको मिला। जब कभी भी वह अपने पूर्वजन्मके कथित हत्यारोंमेंसे किसीको भी देख लेता है, वह अत्यन्त बुरी तरहसे डर जाता है। रविशंकरके चेहरेपर भी कुछ ऐसे दाग दिखायी देते हैं जो असामान्य हैं। रविशंकरने इन सब चिह्नोंको अपने पूर्वजन्मके समय की गयी हत्याके चिह्न बताया है।

इस घटनाके प्रति पूर्ण विश्वस्त हो जानेपर श्री-जागेश्वरप्रसादने 'चतुरी' तथा 'जवाहर' नामक दो व्यक्तियोंपर नये सिरेसे हत्याका मुकदमा दायर करनेकी कोशिश भी की, लेकिन न्यायालयने रविशंकरको उस घटनासे किसी भाँति सम्बन्धित न पाकर उस मुकदमेकी स्वीकृति प्रदान नहीं की।

रविशंकरके पुनर्जन्मकी घटनासे सम्बन्धित कुछ तथ्य

अनेक गवाहोंके प्रमाणीकरणसे यह बात जाहिर होती है कि जाँचसे पूर्व गुप्ता और नाई परिवारवालोंका परस्पर कोई सम्पर्क अथवा सम्बन्ध नहीं हुआ था। सन् १९५५ में रविशंकरद्वारा बतायी जानेवाली बातोंको जानकर ही श्रीजागेश्वरप्रसादने सर्वप्रथम गुप्ता-परिवारसे सम्पर्क किया था। जब कि यह बात प्रकट थी कि कन्नौजके अन्य निवासियोंकी भाँति गुप्ता-परिवारको भी चार वर्ष पूर्व की गयी मुन्ना नामक एक बालककी निर्मम हत्या हो जानेकी सूचना थी।

शोधकर्ताओंद्वारा यह बात भी मालूम की गयी कि रविशंकरके परिवारके सदस्य मुन्नाके हत्याकाण्डके बारेमें बातचीत करने तकसे इनकार करते हैं। इसका प्रमुख कारण कदाचित् यह है कि न तो वे रविशंकरको किसी कानूनी मामलेमें फँसाना चाहते हैं और न वे यह सहन कर सकते हैं कि पूर्वजन्मकी स्मृतिके कारण रविशंकर जागेश्वरप्रसादके पास जाकर रहने लग जाय। इन दो बातोंके अध्ययनसे यह तथ्य प्रकट होता है कि रविशंकरको अपने परिवारके सदस्योंद्वारा उक्त घटनाके बारेमें जानकारी दी जानी सम्भव नहीं है। दूसरे, रविशंकरद्वारा बताये गये खिलौने तथा अन्य वस्तुएँ ऐसी विस्तृत जानकारी हैं जिनके बारेमें रविशंकर-के परिवारवालोंको पता होना सम्भव नहीं लगता। रविशंकरद्वारा अपने परिवारके बाहरके वातावरणसे मुन्नाके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करना असम्भव नहीं लगता, लेकिन यह बात यों गलत सिद्ध हो जाती है कि जब वह तीन सालका ही था तभीसे मुन्नाके विषयमें बोलना उसने आरम्भ कर दिया था। एक गवाहके अनुसार तो रविशंकरने ये बातें लगभग दो वर्षकी अवस्थासे ही बतानी शुरू कर दी थी। इस उम्रके बच्चेका निश्चय ही अपने मकानसे बाहर जाना भारतवर्षमें सम्भव नहीं है। इसके अलावा भी जागेश्वरप्रसादका मकान श्रीगुप्ताके मकानसे डेढ़ मीलकी दूरीपर पहाड़ियोंके उस पार स्थित है और ३-४ सालके बच्चेका इन पहाड़ियोंको पार करके वहाँ जाना बहुत कठिन है।

इस घटनाके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पुनर्जन्म-सम्बन्धी खोजके सिलसिलेमें गुप्ता-परिवार-वालोंकी ओरसे रुचि न दिखायी जाकर घटनाका पता लगनेपर श्रीजागेश्वरप्रसादने स्वयं अपना उत्साह दिखाया। रविशंकरके परिवारवाले तो उन घटनाओंके स्मरण मात्रसे उसे पिटाईकी धमकी दे दिया करते थे। इसके बावजूद भी रविशंकर अपने पूर्वजन्मकी चर्चा पड़ोसियोंसे किया करता था, जिसके कारण ये बातें शनैः-शनैः श्री-जागेश्वरप्रसादके कानोंतक भी पहुँचीं। श्रीजागेश्वर-प्रसाद भी इस आशामें कि अब मुन्नाके हत्यारोंका अपराध सिद्ध हो सकेगा, रविशंकरके पिता श्रीगुप्तासे मिलनेके लिये आये।

रविशंकरके चेहरेपर जन्मसे जो चिह्न हैं वे भी इस बातका संकेत करते हैं कि वे उसकी पूर्वजन्ममें की गयी हत्याके ही चिह्न हों। स्वयं रविशंकर इन चिह्नोंको हत्याके चिह्न ही बताता है। इस तरह रविशंकरके इस वृत्तान्तमें अनेक ऐसे तथ्य हैं जो रविशंकरका तादात्म्य पूर्वजन्ममें मुन्नाके साथ जोड़ देनेमें काफी सहायक हैं।

परामनोविज्ञान-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर वैज्ञानिक रीतिसे बिना किसी पूर्वाग्रहके ऐसे वृत्तान्तोंके शोधमें अभी संलग्न है अतएव इस प्रकारकी घटनाओंके सम्बन्धमें यदि कोई जानकारी देना चाहें तो विभाग उनका स्वागत करता है। पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर किया जा सकता है—

प्रो० हेमेन्द्रनाथ बनर्जी, संचालक परामनोविज्ञान-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, राजस्थान

गोरक्षा-अभियान

(लेखक—पं० श्रीविश्वम्भरप्रसाद शर्मा, मन्त्री, भारत गोसेवक-समाज, दिल्ली)

वेदमें गौका महत्त्व

भारतवर्षमें अनादि कालसे गोवंशको वन्दनीय और रक्षणीय माना गया है। 'गो' शब्दके श्रवण मात्रसे हमारा हृदय गद्गद हो जाता है और हमारे अन्तस्तलसे करुणाका स्रोत उमड़ पड़ता है। गो हमारे धर्म और संस्कृतिका प्रतीक तथा हमारे राष्ट्रका जीवन-प्राण है। भारतकी अर्थ-व्यवस्था सदा गो-केन्द्रित रही है। गोवंश भारतका सर्वस्व है।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥
(ऋग्वेद ८ । १०१ । १५)

वेदोंने गायको माता, पुत्री और बहिनके रूपमें सम्बोधित करके बड़े-से-बड़ा स्नेह और आदर प्रदान किया है। गायकी हत्या तो दूर पदाघातद्वारा भी उसका अपमान करनेवाले तकका समूल नाश करनेकी भावना व्यक्त की है। वेदोंमें गौको १२१ स्थानपर 'अघ्न्या' (न मारने योग्य) कहा गया है और गोहत्यारेको प्राणदण्ड देनेका आदेश किया है।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नो सो अवीरहा ॥
(अथर्ववेद १ । १६ । ४)

भारतीयोंने गोरक्षाके लिये बलिदान करना सदा अपना कर्तव्य समझा। सम्राट् दिलीप, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि जमदग्नि और वीर अर्जुनने गोरक्षाके लिये अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर यह प्रमाणित किया कि राष्ट्रके लिये गौका कितना महत्त्व है। मुस्लिम आक्रमणकारी जन भारतीय सेनाओंको परास्त न कर सके तो उन्होंने गायोंको अपने आगे कर लिया ताकि राजपूत-सेनाएँ गौओंपर गोली न चलानेके कारण परास्त की जा सकें। वीर राजपूतोंने पराधीनता स्वीकार की परंतु गौओंके ऊपर शस्त्र नहीं उठाया। पंजाबके नामधारी सिक्खोंने गोरक्षाके लिये अंग्रेजोंकी तोपोंके सामने अपने सीने खोल दिये। ब्रिटिश शासनमें गोहत्याके कारण अनेक स्थानोंपर उपद्रव हुए जिनमें बहुत लोगोंके प्राण गये।

देशके महापुरुषों और राष्ट्रनेताओंने सदा गोहत्याका विरोध किया। महर्षि स्वामी दयानन्दजीने आजसे सौ वर्ष पहले 'गोकरुणानिधि' पुस्तक लिखकर गोहत्याको बंद करनेकी ओर जनता तथा सरकारका ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने तीन करोड़ भारतीयोंके हस्ताक्षर कराके महारानी विक्टोरियाके पास गोहत्या बंद करनेके लिये आवेदन किया। स्वामीजीने कहा कि 'गौ आदि पशुओंका नाश होनेसे राजा और प्रजा दोनोंका नाश हो जाता है।'

कांग्रेसके नेताओंने गोहत्याका सदा विरोध किया। लोकमान्य तिलकने तो यहाँतक कहा कि 'स्वराज्य मिलनेपर हम ५ मिनिटके भीतर भारतमें कानूनद्वारा गोहत्या बंद कर देंगे।'

महात्मा गाँधीजीने खिलाफतकी लड़ाईमें मुसल्मानोंका इसीलिये साथ दिया ताकि उनके सहयोगसे गोरक्षा हो सके। गाँधीजी गोरक्षाके प्रश्नको स्वराज्यसे बड़ा प्रश्न मानते थे। उन्होंने यह कहा कि 'मेरे नजदीक मनुष्य-वध और गोवध—दोनों एक चीज हैं।' गाँधीजीने देशके तमाम

बूढ़े और लूले-लँगड़े पशुओंकी रक्षा करना सरकारकी जिम्मेदारी बताया था। संत विनोबा भावेजीने नवम्बर १९५२ में कहा है—

'इस देशमें गोहत्या नहीं चल सकती। गाय और बैल हमारे समाजमें दाखिल हो गये हैं। सीधा प्रश्न यह है कि आपको देशका रक्षण करना है या नहीं? यदि करना है तो गोवध भारतीय संस्कृतिके अनुकूल नहीं आता, इसका आपको ध्यान करना चाहिये। गोहत्या जारी रही तो देशमें बगावत होगी। गोहत्या-बंदी भारतीय जनताका मैण्डेट (Mandate) या लोकाज्ञा है और प्रधान मन्त्री महोदयको इसे मानना चाहिये।'

गोवंशसे राष्ट्रीय आय

सरकारी विशेषज्ञों और राष्ट्रीय आय कमेटीके अनुसार १९५१ और ५४ की स्थितिके अनुसार देशको गोवंशसे १९६१ करोड़ रुपयेकी आय हुई। डा० केहरके अनुसार तो यह आय ३००० करोड़ होती है। इस तरह देशकी समस्त राष्ट्रीय आयका एक चौथाई हमें गोवंशसे मिलता है।

एक दूध देनेवाली गाय जिसका वजन १००० पौंड हो, सालभरमें १२ टन गोबर और मूत्र देती है। गायके गोबर और मूत्रसे बनी खाद सर्वश्रेष्ठ होती है। इस गोबर और मूत्रका मूल्य २८ डालर है।

गायका दूध अमृतके समान होता है जो मनुष्यको वीर्यवान् और दीर्घजीवी बनाता है। प्राचीनकालमें गायका दूध और घी खा करके ही भारतीय मेधावी और बलशाली बनते थे। गायके पुत्र बैलोंद्वारा खेती होती है, जिससे हमें अन्न तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुएँ मिलती हैं। इस तरह गाय हमारे लिये ईश्वरीय वरदान है। हमारे राष्ट्रका सर्वस्व है।

स्वतन्त्र भारतमें गोहत्या बढ़ी

यह स्वप्नमें भी आशंका न थी कि स्वराज्य मिलनेपर भी भारतके मस्तकपर गोहत्याका कलंक लगा रहेगा। परंतु स्वतन्त्र भारतमें अंग्रेजी शासनकी अपेक्षा कहीं अधिक गोहत्या होती है। अंग्रेजी शासनकालमें १९४६-४७में जब पाकिस्तान हमारे साथ था—७,४५,००० बछड़े और गायोंकी खालोंका विदेशोंको निर्यात हुआ। १९५१-५२में यह संख्या बढ़कर ६४,२०,१२४ हो गयी और १९५५-५६में ८०,७०,०६३ तक जा पहुँची। उसके बाद तो देशमें सरकारी नीतिके कारण गोहत्या और बढ़ी है। हमारा अनुमान है कि भारतमें आज प्रतिदिन ३० हजार गोवंशकी हत्या होती है। दुर्भाग्य यह देखिये कि यद्यपि भारतमें संविधानकी धारा ४८में साफ तौरपर गोहत्या बंद करना राज्यकी नीति निर्देशित किया गया है परंतु सरकार इस ओरसे आँखें बंद किये हुए है!

जनताका बढ़ता हुआ असंतोष

स्वतन्त्र भारतमें गोहत्याको बढ़ावा देनेकी सरकारकी नीतिसे जनतामें भारी असंतोष है। भारतका संविधान बननेके बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघकी ओरसे करोड़ों हस्ताक्षरोंसे गोहत्या बंद करानेके लिये राष्ट्रपतिजीके पास आवेदन किया गया। पचास हजार सभाओंमें प्रस्ताव पास करके सरकारसे गोहत्या-बंदी-कानून बनानेकी माँग की गयी; परंतु सरकारने कोई सुनवाई न की।

सरकारकी गोहत्या जारी रखनेकी नीतिके खिलाफ पूज्यपाद स्वामी श्रीकरपात्रीजीके नेतृत्वमें कलकत्ता और बम्बईमें सत्याग्रह हुआ। गोरक्षा-आन्दोलनके प्राण स्व० लाला हरदेव-सहायजीने गोहत्या-निरोध-समितिकी स्थापना कर देशव्यापी आन्दोलन किया और पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके सहयोगसे उत्तरप्रदेश और बिहारमें सत्याग्रह किया। इस आन्दोलनके फलस्वरूप कई प्रदेशोंमें गोहत्या-बंदी-कानून बने। सुप्रीमकोर्टके हस्तक्षेपके कारण ये कानून अधूरे हैं। इनके द्वारा केवल गाय और बछड़े-बछड़ियोंकी हत्या बंद है। परंतु १५ वर्षकी आयुके ऊपरके बैल और साँड़ोंकी हत्या जारी है। इन अधूरे कानूनोंके कारण उपयोगी पशु भी मारे जाते हैं और अवैध गोहत्याको प्रोत्साहन मिलता है। ये अधूरे कानून भी उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान, पंजाब आदिमें ही हैं। महाराष्ट्र, मद्रास, आंध्र, उड़ीसा आदि प्रान्तोंमें तो गायकी हत्या भी जारी है।

गोरक्षा-अभियानको सफल बनाइये

पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने गतवर्ष वृन्दावनमें एक वर्षका गोव्रत धारण किया था। इसमें श्रीब्रह्मचारीजी प्रतिदिन जमुनापार गौएँ चराते थे। केवल टाटका ही परिधान धारण करते थे और अल्प मात्रामें गोदुग्ध सेवन करते तथा गौओंके मध्यमें ही सोते थे। ब्रह्मचारीजीकी

तपश्चर्याका गोरक्षा-आन्दोलनके लिये लाभ लेनेकी दृष्टिसे भारत गोसेवक-समाजने अगस्त १९६४ में अखिलभारतीय गोरक्षा-सम्मेलनका आयोजन किया। इस सम्मेलनमें देशके उन सभी दलोंको निमन्त्रित किया जो गोरक्षण-आन्दोलनसे सम्बन्धित थे या उससे सहानुभूति रखते थे। सम्मेलनकी अध्यक्षता सुप्रसिद्ध गोसेवी उद्योगपति श्रीगङ्गाधरजी सोमानीने की। स्वागताध्यक्ष कलकत्तेके गोभक्त सेठ रामप्रसादजी राजगढ़िया थे। सम्मेलनका उद्घाटन भारतके लोकप्रिय हिंदू नेता परम पूज्य गुरुजी (श्रीगोलवलकरजी) ने किया था।

इस सम्मेलनने एक प्रस्तावद्वारा सरकारसे यह माँग की है कि गोपाष्टमी सं० २०२२ तक समग्र देशमें कानूनद्वारा सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या बंद कर दी जाय। जबतक कानून न बने, तबतक एक अध्यादेश निकालकर गोहत्यापर प्रतिबन्ध लगाया जाय। यदि आवश्यक हो तो इसके लिये संविधान-में संशोधन किया जाय। सम्मेलनने यह भी निश्चय किया है कि यदि सरकार यह माँग स्वीकार न करे तो देशसे गोहत्याका कलंक हटानेके लिये शान्तिमय प्रजातान्त्रिक आन्दोलन सत्याग्रह आदि आरम्भ किया जाय। इसके लिये गोरक्षा-अभियानके २० लाख सदस्य बनाये जायँ और उनसे १ रुपया सदस्यता-शुल्क लिया जाय। सदस्यता-शुल्क तथा अन्य सहायताके रूपमें २० लाख रुपये एकत्र किया जाय। जिससे देशभरमें गोरक्षा-अभियान चलाया जा सके।

देशके प्रभावशाली सज्जनोंके एक शिष्टमण्डलने २२ फरवरी १९६५को प्रधानमन्त्री श्रीलालबहादुरजी शास्त्रीसे भेंट की और वृन्दावन-सम्मेलनके निश्चयानुसार गोहत्या-बंदी कानून बनानेकी माँग की। एक आवेदनपत्र श्रीप्रधानमन्त्रीजीको भेंट किया गया। प्रधानमन्त्रीजीने यद्यपि सहानुभूतिके साथ शिष्ट-मण्डलकी बातें सुनीं; परंतु उन्होंने कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया। यह शिष्टमण्डल राष्ट्रपतिजी एवं खाद्यमन्त्रीजीसे भी मिला।

आशा और निराशाका वातावरण

हमारा शिष्टमण्डल मिलनेके बाद प्रधानमन्त्री श्रीलालबहादुरजी शास्त्रीने हैदराबादमें अ० भा० गोसंवर्धन-सम्मेलनका २१ मार्च १९६५ को उद्घाटन किया। अपने भाषणमें प्रधानमन्त्रीजीने गोरक्षा-आन्दोलनके प्रति अपनी सहानुभूति अवश्य व्यक्त की और कहा कि गोरक्षाके सम्बन्धमें करोड़ों लोगोंकी जो भावनाएँ हैं, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनका उत्तर सहानुभूतिपूर्ण था; परंतु उन्होंने सरकारकी ओरसे कोई निश्चयात्मक बात नहीं कही। यहाँतक कि देशमें कई स्थानोंपर यान्त्रिक कसाईखाने बनानेकी जो घातक योजनाएँ हैं और जिनका देशमें घोर विरोध है, उनके स्थगित करनेकी भी घोषणा नहीं की।

जनता बलिदानके लिये तैयार हो

सरकारकी जो वर्तमान मनःस्थिति है और कांग्रेसके नेताओंकी परिस्थिति है, उसे देखते यह आशा बहुत ही क्षीण है कि सरकार देशमें एक केन्द्रीय कानूनद्वारा सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या बंद कर देगी। यद्यपि प्रजातन्त्रीय शासनका यह कर्तव्य है कि वह प्रजाकी भावना और आकाङ्क्षाओंका आदर करे। लेकिन आजका शासन राजनीतिकी ऐसी दलदलमें फँसा है कि उससे हम कोई निर्भीक कदम उठाने-की आशा नहीं कर सकते। शासन जब अकर्मण्य हो और अपने कर्तव्यका पालन करनेमें असमर्थ हो तो प्रजाको वैधानिक रूपसे अपनी आकाङ्क्षाओंकी पूर्तिके लिये आन्दोलन करनेका अधिकार है।

अतः गोभक्त जनताको वृन्दावन-सम्मेलनके आह्वानके अनुसार गोहत्याके कलंकको मिटानेके लिये कमर कसकर मैदानमें कूद पड़ना चाहिये। इस आन्दोलनको चलानेके लिये पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीकी अध्यक्षतामें एक केन्द्रीय गोरक्षा-अभियान-समिति गठित की गयी है। यह समिति समय-समयपर आन्दोलनके लिये आदेश देगी। पूज्य ब्रह्मचारीजी इस समय गोरक्षा-अभियानके सिलसिलेमें देशका भ्रमण कर रहे हैं।

गोरक्षा-अभियानके सदस्य बनिये

उक्त आन्दोलनको चलानेके लिये देशमें २० लाख सदस्य बनाये जा रहे हैं। इन सदस्योंसे एक-एक रुपया सहायता प्राप्त की जा रही है। प्रत्येक गोभक्तको एक रुपया देकर गोरक्षा-अभियानका सदस्य बनना चाहिये। गो-सेवी कार्यकर्ता गो-रक्षा-अभियानके सदस्य बनानेके लिये **भारत-गोसेवक-समाज ३ सदर थाना रोड, दिल्ली ६** से रसीद-बही मँगवा लें। यह २० लाख सदस्य अविलम्ब बनने चाहिये। गोसेवी कार्यकर्ताओंको स्थान-स्थानपर सदस्य बनानेमें जुट जाना चाहिये। गोरक्षा-अभियानके सदस्य बननेमें लोग कितना उत्साह दिखाते हैं। इससे उनकी गोभक्ति और

गोरक्षाके लिये बलिदान एवं त्याग करनेकी याचनाका पता चलेगा।

सत्याग्रही बनिये

गोरक्षा-अभियानके सदस्य बनानेके साथ २५ हजार सत्याग्रही भी भर्ती करने हैं, जो केन्द्रीय गोरक्षा-अभियान-समिति-का आदेश मिलते ही सत्याग्रह करनेके लिये तैयार रहें। गोमाता आज बलिदान चाहती है और बलिदान दिये बिना गोहत्याका कलंक दूर न होगा।

[उपर्युक्त लेख छपते-छपते यह समाचार मिला है कि पाकिस्तान युद्धके कारण देशकी वर्तमान परिस्थितिमें सब लोगोंको मिलकर सरकारकी सहायता करनी चाहिये और देशमें ऐसा कोई भी आन्दोलन नहीं करना चाहिये, जिससे सरकारको जरा भी दूसरी चिन्ता हो। अतएव 'गोरक्षा-अभियान' का कार्य अनिश्चित कालके लिये स्थगित कर दिया गया है।

—सम्पादक]

पराम्बाकी अनुपम अनुकम्पा

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

भावुकोंने पराम्बा जगज्जननी सीताको विशुद्ध कृपा-का रूप माना है। यों भी शक्तिको मूर्तिमान् कृपा अथवा ब्रह्मकी कृपाका सजीव विग्रह कहा गया है। यथा—

चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा।
(मार्क० ८४)

शौरिश्चकास्ति हृदयेषु शरीरभाजां
तस्यापि देवि हृदये त्वमनुप्रविष्टा।
पद्मे तवापि हृदये प्रथते दयेयं
त्वामेव जाग्रदखिलातिशयां श्रयामः॥

अर्थात् समस्त प्राणधारियोंके हृदयमें भगवान्, उनके हृदयमें देवी लक्ष्मी और उनके हृदयमें दया-ही-दया है, अतः हम देवीका ही आश्रय लेते हैं।

कहते हैं करुणामूर्ति सीतादेवीके सामने न होनेसे ही निरपराध बेचारे बालीकी जान गयी, अधिक क्या, एक स्त्रीकी भी (ताड़काकी) हत्या हो गयी—

त्वय्येवाश्रयते दया रघुपते देवस्य सत्यं यतो
वैदेहि त्वदसंनिधौ भगवता वाली निरागा हतः।
निन्ये कापि वधूर्वधं तव तु सांनिध्ये त्वदङ्कव्यथां
कुर्वाणोऽप्यभितः पतन्न शरणः काकोऽविवेकोज्झितः॥

और हे सीते! तुम्हारे साथ होनेपर तो तुम्हारे ही शरीरमें चारों ओरसे चोट पहुँचानेवाले मूर्ख जिसे शरणागत होनेका भी शऊर न था, उस काककी भी किसी प्रकार रक्षा हो गयी। (पद्मपुराण उत्तरखण्ड २४२। २०७ के अनुसार काक अलग ही गिर पड़ा था। देवीने उसे रामके चरणोंसे झट लगा दिया था।) इसी प्रकार तत्काल आर्द्र—ताजे अपराध करनेवाली राक्षसियों-की जान बचाकर तो मानो तुमने महामहिम रामकी भी देवोत्तर गोष्ठीको तिरस्कृत कर दिया—

मातर्मैथिलि! राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठीकृता॥
(गुणरत्नकोश ५०)

यहाँ पराशर भट्टारकके इस मार्मिक निवेदनका तात्पर्य (संकेत) वाल्मीकिरामायणके युद्धकाण्ड ११३ वें सर्गकी कथासे है। भगवान् रामकी आज्ञासे अशोकवाटिका-में जाकर हनुमान्‌जीने सीताजीसे लंकाविजयका समाचार सुनाया तो सीताजी बहुत प्रसन्न हुईं और आनन्दविभोर होकर कुछ भी बोल न पायीं। इस प्रकार उन्हें मौन देख हनुमान्‌जी कहने लगे—'देवि! आप क्या सोच रही हैं, बोलतीं क्यों नहीं?' इसपर सीताजीने कहा कि 'तुम्हारे पुरस्कारयोग्य कुछ वस्तु खोज रही थी। पर सार्वराज्य भी इसके बदलेमें कम दीखा, तब चुप रह

गयी।' हनुमान्‌जीने कहा कि 'वह तो रामको विजयी देखते ही मिल गया, पर अब यदि आप वर देना चाहती हों तो अपने कष्ट देनेवाली राक्षसियोंके वधकी आज्ञा दें।' इसपर देवी बोलीं—'ऐसा मत कहो। यह तो सब दैवी ही गति थी। इनके तर्जनमें रावण ही कारण था। इन बेचारी पराधीन दासियोंका उसमें क्या दोष था। देखो, अब उसके मरनेपर ये बेचारी कुछ नहीं कहतीं। अतः मेरा यही निश्चय है कि पूर्वजन्मके कर्मफल तथा इस जन्मके दशायोगसे यह सब मुझे भोगना ही था। देखो, इस विषयमें एक पुराना पुराणशास्त्रोक्त धर्ममय वचन है, जिसे एक भालूने बाघके सामने कहा था, उसे तुम सुनो[1]—

अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंहितः।
ऋक्षेण गीतः श्लोकोऽस्ति तं निबोध प्लवङ्गम!॥
न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥
(११३।४३-४४)

'पापका परिणाम प्राणी स्वयं ही भोगता है। अतः सत्-पुरुष पापका बदला पापसे कभी नहीं चुकाते। वे तो अपने ही शील-सदाचार और व्रतप्रतिज्ञाका निर्वाह करते हैं। वस्तुतः शील ही सत्पुरुषोंका भूषण है।'

शीलं सतां भूषणम्। (भर्तृहरि० १।८२)

अतः वध्य तथा पापी जीवोंपर भी आर्यपुरुषको दया ही करनी चाहिये; क्योंकि इस संसारमें भला ऐसा कौन है, जिससे कभी अपराध न बन पाया हो? और जब हम सभी कम-बेशी अपराध करनेवाले हैं ही तो हम किसीको दण्ड क्यों दें—

न कश्चिन्नापराध्यति॥ (वाल्मी० रामा० ६।११३।४७ तथा ४।३६।११)

भगवती सीताके इस कथनपर हनुमान्‌जी आश्चर्यविमुग्ध रह गये और पुनः स्वस्थ होकर कहने लगे—देवि! श्रीरामके अनुरूप ही तुम उनकी पत्नी हो। तुम्हारे गुणोंकी सीमा नहीं है।[2]

१. यह कथा कितने ही ग्रन्थोंमें मिलती है। सबका सार इस प्रकार है—एक बार एक राजपुत्र अनेक अपशकुनों तथा विद्वानोंकी सम्मतियोंकी परवाह न कर आखेटके लिये गहन वनमें चला गया। वहाँ एक मृगका अनुगमन करता हुआ वह एक महान् अरण्यके निविडतम भागमें जा पहुँचा और थककर घोड़ेको एक वृक्षमें बाँध उसीके नीचे आराम करने लगा। इतनेमें ही बाघकी आहट पाकर घोड़ा रस्सी तोड़ भाग गया। राजकुमार भयसे वृक्षके ऊपर चढ़ गया। वहाँ भी ऊपर एक भालू था, जिसे देखकर वह अत्यन्त डरकर घबरा गया। भालूने उसे सान्त्वना दी और शान्त निर्भीक होकर वहाँ आराम करनेकी सम्मति दी। वृक्षसे गिरनेके भयसे उसने राजपुत्रको अपनी गोदमें ही सुला लिया। उसके सो जानेपर बाघने भालूसे कहा कि 'हम दोनों तो वन्य जीव हैं। यह राजकुमार वन्य प्राणियोंका शत्रु है, तुम उसे गिरा दो और मैं इसे खाकर चला जाऊँ।' पर भालूने उसकी बात नहीं मानी। राजकुमारके जगनेपर बाघसे सावधान रहनेको कहकर भालू भी वृक्षकी एक शाखा पकड़कर सो गया। अब बाघने राजकुमारको बहकाना आरम्भ किया और भालूको गिरानेको कहने लगा। उसकी बातोंमें आकर राजकुमारने भालूको गिरा दिया। पर शाखा-प्रशाखा-ग्रहण-कुशल होनेके कारण वह बीचमें ही एक डालके सहारे रुक गया। इसपर जब बाघने पुनः भालूसे राजकुमारको गिरानेको कहा तब भालूने उपर्युक्त 'न परः' आदि वचन कहा था। बादमें भालूने उसे अपनी पीठपर नगरतक पहुँचा दिया। पर अपने कर्मसे उसे 'ससेमिरा' पिशाच लग गया। पुनः एक विद्वान्‌द्वारा 'सद्भावप्रतिपन्नानां', 'सेतुं गत्वा समुद्रस्य' आदि चार श्लोक पढ़नेपर वह स्वस्थ हुआ।

२. (क) हनुमान्‌जीकी इस तुलनाका कारण यहाँ यह अनुमित होता है कि विभीषणके शरणागत होनेपर हनुमान्‌जीको छोड़कर उनके ग्रहणका सभीने विरोध किया था। पर भगवान् रामने एक कपोतकी कथा तथा कण्डु ऋषिद्वारा गायी गयी गाथाका पठनकर हनुमान्‌जीका समर्थन किया और विभीषणकी शरणागति स्वीकार कर ली थी। उनके वचन थे—

श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः।
अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः॥
(६।१८।२४)

इस महात्मा कपोतकी कथा महाभारत शान्तिपर्वके १४३ से १४९ अध्याय, ब्रह्मपुराणके ८०वें अध्याय तथा स्कन्द-

इस प्रकार ये कारुण्यसमुद्रकी सीमा देवी दुष्ट रावणको भी रामसे मित्रता कर प्राण-रक्षाका उपदेश देती हैं—

विदितः स हि धर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥
(वा० सुन्दर० २१ । २०)

इसीलिये गोस्वामीजी महाराज भी 'कबहुँक अंब अवसर पाइ।' आदि कई पदोंसे इनकी शरण लेते हैं। वस्तुतः ऐसी वात्सल्य-कारुण्य-सागरा—निजाम्बाकी शरणके बिना प्राणीका श्रेय कैसे हो सकता है ? यह तो भारी चूक है, अतः इनके ही चरण परम शरण्य हैं।*

पुराणके ब्रह्मखण्ड एवं पञ्चतन्त्र [काकोलूकीय ८] आदि अनेकानेक स्थलोंपर प्राप्त होती है। अनुमानतः भगवान् श्रीरामने अपनी गोदावरी-यात्रामें ब्राह्मणोंद्वारा इस कथाको वहाँ तत्काल ही सुना होगा। यों भी पुराणोंमें ब्रह्मपुराणको आदिपुराण माना जाता है। अतः यहाँ उसका ही सार दिया जाता है।

गोदावरी नदीके निकटवर्ती ब्रह्मगिरिपर एक भयंकर व्याध रहता था। एक दिन आखेटसे जब वह वापस आ रहा था तो भीषणतम झंझावात तथा मूसलाधार वृष्टिके कारण वह मार्गमें ही बेहोश होकर गिर पड़ा। वहीं एक वृक्षपर वह कपोत महात्मा रहता था। उसकी कपोती भी व्याधके पिंजड़ेमें थी और कपोत उसकी चिन्तामें सोचता हुआ उसकी प्रशंसा कर रहा था। कपोतीने कहा कि 'अपनी प्रशंसा सुनकर मैं कृतार्थ हो गयी, किंतु आज तो आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करें। यह देखिये, आज आपके यहाँ एक अतिथि आये हैं और वह अब शीतार्त होकर मरना ही चाहते हैं।' कपोत महात्मा स्वाभाविक धर्मात्मा था। वह तत्काल उड़ा और कहींसे थोड़ा-सा सूखा तृण तथा अग्निको चोंचसे उठा लाया। उससे अग्नि प्रज्वलित कर उसने व्याधको तपाया। जब व्याध होशमें आया तो कबूतरीने कपोतसे कहा कि 'महाभाग! अब आप मुझे किसी प्रकार आगमें डालकर अतिथिका भोजन-सत्कार करें; क्योंकि यह क्षुधा-दावानलमें जल रहे हैं और सौभाग्यसे मांसभक्षी हैं।' पर कपोतने स्वयं ही भगवान् नारायणका ध्यानकर अग्निमें प्रवेश किया। अबतक किसी प्रकार व्याधको भी सद्बुद्धि आ गयी थी। वह कपोतद्वारा अपनी प्राणरक्षा तथा आतिथ्यका रहस्य सब समझ गया था। उसे सच्चा पश्चात्ताप हुआ और उसने लाठी, जाल और पिंजड़ा आदि सब कुछ फेंक दिया। कबूतरीको भी छोड़ दिया। छूटते ही कबूतरी भी अपने पतिका ध्यानकर अग्निमें कूद पड़ी। इसी समय आकाशमें दो विमान आ गये और दोनों ही कपोतदम्पति उसपर बैठकर स्वर्ग चले।

व्याध यह सब देख रहा था। उसने कहा—'महात्मन्! इस प्रकार शरणागतका परित्याग ठीक नहीं। आप मुझे नरकमें छोड़कर चले जायँ, यह आपके अनुरूप न होगा।' इसपर कपोतने उससे एक मासतक माघमें गोदावरी-स्नान करनेको कहा। गोदावरी-तटपर जहाँ यह घटना घटी थी, वह 'कपोततीर्थ'के नामसे विख्यात है। व्याध भी पीछे मुक्त हो गया। कपोततीर्थपर आज भी जो स्नान आदि करता हुआ कपोत महात्माका स्मरण करता है, उसका भाव पलट जाता है। वहाँ किया गया जप-तप-स्नान-दान-यज्ञ-श्राद्ध सब अक्षय होता है।

शीलसंरक्षणमें महाभारत आपद्धर्मके अन्तमें राजधर्मा पक्षीकी कथा भी इसी प्रकारकी है। वह कथा विस्तृत तथा कई अध्यायोंमें है। पाठकोंको उसे महाभारत-अङ्क अथवा किसी महाभारतमें ही देखना चाहिये। उसने पुनर्जीवन प्राप्त होनेपर अपनी हत्या करनेवालेका भी परम कल्याण किया था। साधु और बिच्छूकी भी प्रसिद्ध कथा इसी प्रकार है।

(ख) इनके वात्सल्यादि गुणोंकी सीमाका निर्देशक आचार्य रामानन्दका निम्नस्थ पद्य बड़ा सुन्दर है—

ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जगच्चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणवात्सल्यसीमा च या ।
विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिरमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा दत्तान्नोऽखिलसम्पदो जनकजा रामप्रिया सानिशम् ॥ (वैष्णव-मताब्जभास्कर ३)

* कृपाको धर्मकी माता माना है विष्णु, मत्स्यादि पुराणोंमें। (कहीं-कहीं हरिवंशादि पुराणोंमें श्रद्धाको भी धर्मकी माता माना है।) अतः धर्मोत्पत्तिका स्थान भी आप ही हैं। यों स्वयं आपका वाल्मीकि आदि रामायणोंमें बार-बार कथन है—

'धर्माद् विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥' (वाल्मी० २ । ३९ । २८)

पाकिस्तान-चीन-संघर्षमें हमारा कर्तव्य तथा विजय और विश्वशान्तिके साधन

काश्मीर तो भारतका है ही, पर सत्य तो यह है कि सारा पाकिस्तान ही विशाल भारतका एक खण्ड है, पृथक् देश नहीं। विदेशी कूट राजनीतिज्ञोंके असत्परामर्शको मानकर भारतने अपने ही अंशको पृथक् देश मान लिया और उसका पाकिस्तान नाम स्वीकार कर लिया—यही सबसे बड़ी भूल हुई। पाकिस्तानका पृथक् अस्तित्व ही आजकी इस विपत्तिका कारण है। भारत अखण्ड रहता तो, न तो भारतपर उसके किसी खण्डके द्वारा आक्रमण ही होता और न चीनको धमकी देने तथा ब्रिटेन एवं अमेरिकाको कूट राजनीतिक चाल चलनेका ही अवसर मिलता और यह निश्चित समझना चाहिये कि जबतक पाकिस्तानका पृथक् अस्तित्व रहेगा, तबतक न तो भारत-पाकिस्तानका युद्ध वस्तुतः बंद होगा और न विश्वमें ही शान्ति होगी। अतएव भगवान्पर विश्वास रखकर भारत तथा पाकिस्तान—दोनोंकी प्रजाके कल्याणके लिये पाकिस्तानका पृथक् अस्तित्व मिटानेका प्रयत्न करना होगा। यह धर्म है और इसीमें एक ही देशमें भूलसे दो पृथक् माने हुए देशोंमें बसनेवाले मनुष्योंका यथार्थ हित है।

इसके लिये किया जानेवाला संघर्ष धर्मसंगत है; क्योंकि इसमें सबकी कल्याणकामना है और वस्तुतः इसमें कोई हिंसा नहीं है। हम अपने ही पिता, पुत्र, भाई, पत्नी, माता आदिके किसी अङ्गमें सड़न पैदा हो जानेपर उसका आपरेशन करवाते हैं। एक-एक फुट लंबा अङ्ग काट दिया जाता है, अंदरकी नस-नाड़ियाँ, हड्डी-पँसलियाँ निकालकर फेंक दी जाती हैं। सड़े हाथ-पैर काटकर अलग कर दिये जाते हैं—इसलिये कि सारे शरीरमें विष न फैल जाय। तो जैसे यह आपरेशन करनेवाला सर्जन छूरा चलानेपर भी हिंसा नहीं करता और जैसे डाक्टरको इस कार्यमें प्रवृत्त करानेवाले उस रोगीके घरवाले—स्वजन-लोग हिंसा नहीं करवाते; इसी प्रकार विराट् अङ्गमें जहाँ-कहीं दूषित व्रण होकर उसमें मवाद भर जाता है, वहाँ उसका आपरेशन किया-कराया जाता है—उसके हितके लिये ही, प्रेमकी प्रेरणासे ही, सुख पहुँचानेके लिये ही। इसीलिये धर्मयुद्ध कल्याणकारक तथा सौभाग्यका सूचक माना गया है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥
यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥

× × ×

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥
(गीता २। ३१-३२, ३७)

'क्षत्रियके लिये ऐसे धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर कल्याणकारक और कुछ भी नहीं है। अर्जुन! अपने-आप प्राप्त हुए, स्वर्गके खुले द्वाररूप इस प्रकारके युद्धका प्राप्त होना सुख-सौभाग्यवान् क्षत्रियोंके लिये ही है। अर्जुन! इस युद्धमें तेरी मृत्यु होगी तो तुझे स्वर्ग मिलेगा और विजय होनेपर पृथ्वीका भोग प्राप्त होगा। अतएव तू युद्धका निश्चय करके खड़ा हो जा।'

किसीका अहित सोचकर, मनमें वैर-बुद्धि रखकर, हिंसावृत्तिसे युद्ध करना धर्म नहीं है, जैसा कि पाकिस्तानके अधिकारी आज कर रहे हैं। परंतु हित तथा प्रेमबुद्धिसे, मनमें किसी प्रकारकी भी हिंसाकी भावना न रखते हुए युद्ध करना धर्म है और धर्म तथा न्यायकी रक्षाके लिये इस धर्मका सम्पादन करना ही चाहिये और विषयभोगोंमें आसक्ति, आशा, ममता, कामनाका परित्याग करके, समस्त कर्मोंको भगवान्में समर्पण तथा सर्वकालमें भगवान्का स्मरण करते हुए, भगवदर्पित मन-बुद्धिसे धर्मयुद्धमें प्रवृत्त होनेपर तो वह

उच्चकोटिका अध्यात्म-साधन वन जाता है और उसके फलस्वरूप मानवजीवनकी चरम और परम सिद्धि भगवत्प्राप्ति हो जाती है। मनुष्य अपने परम ध्येयको प्राप्त कर लेता है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥
(गीता ३। ३०)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
(गीता ८। ७)

'अर्जुन! तू मुझमें मनको जोड़कर सब कर्मोंका मुझमें ही भलीभाँति त्याग करता रह (मेरी पूजाके लिये ही कर्म कर)। भोगोंकी सारी आशा, प्राणी-पदार्थोंकी ममता तथा कामनासे होनेवाले संतापको त्यागकर युद्ध कर और इसलिये सर्वकालमें निरन्तर मेरा स्मरण कर तथा (मेरी पूजारूप धर्म-) युद्ध कर। यों मन-बुद्धि मुझ (भगवान्) में अर्पण कर देनेपर तू निस्संदेह मुझको (भगवान्‌को) ही प्राप्त होगा।' अस्तु,

पाकिस्तानसे युद्धविराम हुआ है—केवल हवाई हमले रुके हैं, गोले-गोलियोंका चलना तो अभी चालू है ही; और पता नहीं, कब युद्ध छिड़ जाय। यही स्थिति चीनी-मनोवृत्तिकी है। अतएव भारतको सदा प्रस्तुत रहना है। इस बार भारतने जिस शौर्य-वीर्य-साहसका विलक्षण परिचय दिया है, वह सर्वथा सराहनीय है तथा हमारे तरुण सैनिकोंने महान् बलिदान करके जो देशका गौरव बढ़ाया है, वह पूर्णतया अभिनन्दनीय है। इसी प्रकार आगे भी हमें पाकिस्तानको अपने मनसे शत्रु न मानकर, उसके हितकी दृष्टिसे ही सतत सजग तथा क्रियाशील बने रहना है।

अहिंसाके नामपर कई बार मनुष्य कायरता तथा क्लैब्यको आश्रय दे बैठता है। अर्जुनमें भी ऐसी ही क्लीवता दिखायी दी थी, तब भगवान्‌ने कहा था—'अर्जुन! इस विषम समयमें तेरे हृदयमें यह अनार्योचित—कायरोंके द्वारा आचरित, स्वर्ग-सद्गतिका विरोधी तथा अकीर्ति करनेवाला क्लैब्य कहाँसे आ गया? यह क्लीवता तेरे योग्य नहीं है। परंतप! हृदयकी इस दुर्बलताका त्याग करके तू युद्धके लिये उठ खड़ा हो।'

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥
(गीता २। २-३)

असलमें अहिंसा वीरोंका धर्म है, दुर्बलहृदय कायरोंका नहीं। कायरकी अहिंसा तो विवशताकी अहिंसा होगी। ऐसा मनुष्य मनमें तो हिंसानलसे जलता रहेगा और बाहर अपनी दुर्बलता और कायरताको छिपानेके लिये अहिंसाकी दुहाई देगा। भारत युद्ध नहीं चाहता, मानवताके विनाशपर तत्पर पाकिस्तान-चीनकी आसुरी दुरभिसंधिके कारण ही भारतपर यह युद्ध लद गया है। ऐसी अवस्थामें अहिंसा तथा शान्तिके नामपर आसुरी शक्तिसम्पन्न समुदायको आसुरी हिंसाके विस्तारमें सुविधा देना, अहिंसा तथा शान्तिका उत्पादक तो होगा ही नहीं, उलटा शान्तिका विघातक होगा और होगा आसुरी शक्तिके विस्तारमें सहायक! आसुरी शक्तिके विस्तारका अर्थ है—पापका प्रसार और उसका अवश्यम्भावी फल है—'चिन्ता, चित्तकी विभ्रान्ति, काम-क्रोध-परायणता, पाप, दुःख और नरक।'

मानवताके विघातक अधर्म, अन्याय, पाप, दुराचार, अनाचारसे सम्पन्न आसुरी आक्रमणके लिये सन्नद्ध आततायीका प्रतिरोध—प्रतिकार न करना निश्चय ही पापको प्रोत्साहन तथा प्रश्रय देना है और एक प्रकारसे अहिंसाके मूलपर कुठाराघात करना है; क्योंकि पापकर्मा असुर यदि विजयी हो जायगा तो वह यथासाध्य विश्वभर-में क्रूर हिंसाका विस्तार कर निर्दोष प्राणियोंके

रक्तकी नदी बहा देगा। अतः उसका प्रतिरोध—प्रतिकार ही नहीं, उसकी आसुरी वृत्तिका सर्वथा विनाश कर देना मानवमात्रके लिये ही नहीं, विश्वके समस्त प्राणियोंके लिये कल्याणकर है। इसीमें अहिंसा है और यही उस समयका कर्तव्य तथा धर्म है।

इसी प्रकार यदि चीन भारतपर बर्बरतापूर्ण आक्रमण करे तो उसका भी हितसाधन करनेके लिये भारतको चाहिये कि भगवान्‌की कृपाके बलपर अपना शौर्य-वीर्य-साहस बढ़ाकर चीनकी आसुरी शक्तिका भी ध्वंस कर दे और उसे पवित्र बौद्ध-विहारस्थली तिब्बतसे भी बाहर निकाल दे। इसीमें उसका, भारतका तथा विश्वका हित है।

हमारी भारत सरकार इस कार्यमें उत्साहपूर्वक लगी रहे, भारतको पूर्णरूपसे विजय प्राप्त हो एवं अखिल विश्वका कल्याण हो, इसके लिये सबको यथायोग्य, यथारुचि, यथासाध्य निम्नलिखित भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक कार्य करने चाहिये।

सेना तथा उपयोगी शस्त्रबलका अधिक-से-अधिक निर्माण और संग्रह। आधुनिक उपयोगी शस्त्रास्त्रोंका निर्माण तथा आयात। पूर्ण सावधानी-सजगताके साथ विरोधी राष्ट्रकी गतिविधिका निरीक्षण तथा ज्ञान। पहलेसे ही उसकी दुरभिसन्धिका पता लगाकर उसकी गतिको रोक देना।

आक्रमणकी सम्भावना होते ही आक्रमण कर देना, जिससे उसकी आक्रमणकी योजना ही नष्ट हो जाय।

जनताका उत्साह तथा मनोबल बढ़े; देशके तरुणोंमें आत्मबलिदान तथा प्रसन्नचित्त एवं गौरवबुद्धिसे प्राण अर्पण, धनियोंमें धनदान, व्यापारियोंका आवश्यक वस्तुओंमें सुविधादान, श्रमिकोंमें श्रमदान और विद्वानोंमें उद्बोधन-दान आदिकी भावना तथा क्रिया बढ़े; माताएँ तथा पतिव्रता पत्नियाँ हँसते-हँसते अपने पुत्रों-पतियोंको विजय या वीरगतिकी प्राप्तिके लिये रणाङ्गणमें भेज दें—इसके लिये यथायोग्य प्रचार, साहित्य-प्रकाशन आदि कार्य करना।

सारे राजनीतिक, सामाजिक मत-भेदोंके रहते हुए ही सबको एकमत और एक मनसे इस महान् कार्यकी सिद्धिमें लग जाना चाहिये।

कांग्रेसी सत्ताधारियोंका आपसी स्वार्थजनक विरोधोंको भूलकर इसी कार्यमें पूर्णरूपसे लग जाना।

भारतकी रक्षाका भार सचमुच हिंदूपर ही है और हिंदू ही इस कार्यको सुचारु रूपसे कर सकता है। इस सिद्धान्तको हृदयङ्गम कर हिंदूपर विश्वास करके हिंदूको अधिक अवसर देना और हिंदूके द्वारा ही सब कुछका रक्षणावेक्षण तथा संचालन कराना चाहिये। इसीमें सुरक्षा है।

यह सत्य अब छिपाया नहीं जा सकता कि भारतके सभी प्रदेशोंमें और अधिकांश नगरों-गाँवोंमें पाकिस्तान तथा चीनके साथ सहानुभूति एवं प्रीति रखनेवाले और भारतके साथ विश्वासघात करनेवाले बहुत-से लोग हैं। इनका पाकिस्तान-चीनके साथ सम्बन्ध है और ये भारतको अपना देश न मानकर पाकिस्तानको मानते हैं तथा पाकिस्तानकी केवल विजय ही नहीं चाहते, पाकिस्तानको हर तरहकी अनर्गल अवैध सहायता भी पहुँचाते रहते हैं। इनसे विशेष सावधान रहनेकी तथा इनके लिये दण्डविधानकी भी आवश्यकता है।

अमेरिका तथा यूरोपके राष्ट्रों एवं एशिया आदिके सभी राष्ट्रोंसे यथासाध्य प्रेम बढ़ाना तथा उनसे यथासम्भव सहानुभूति-सहायता प्राप्त करनी चाहिये। पर ऐसा भी न होना चाहिये कि उनकी चालमें आकर हम कहीं अपने भारतवर्षका कोई नुकसान कर बैठें।

अमीर-गरीब सभीको चाहिये कि इस विकट समयमें सभी लोग सभी ओरसे सरकारके साथ यथासाध्य पूर्ण सहयोग करें तथा समराङ्गणमें वीरगतिको प्राप्त हमारे तरुण वीरोंके परिवारवालोंकी सेवा-सहायता करें। इसके

अतिरिक्त, घायल सैनिकोंकी यथासाध्य उपयोगी सेवा करके उनको हार्दिक सहानुभूति प्रदान कर संतुष्ट करें।

व्यापारी मुक्तहस्तसे सरकारको धन-दान दें तथा सरकार भी व्यापारीवर्गपर विश्वास करे और उनके लिये व्यापारमें विशेष सुख-सुविधा प्रदान करे।

सरकार कानूनके द्वारा सम्पूर्ण भारतवर्षमें गोवध तुरंत बंद कर दे तथा हिंसापूर्ण नवीन कसाईखानोंकी सारी योजनाओंको तुरंत रद्द कर दे।

विश्वशान्ति तथा भारतविजयके लिये नीचे लिखे अनुसार कार्य यथासाध्य करने चाहिये—

१—हिंदू (सनातनी, आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, सिख) पारसी आदि सभी लोग अपनी-अपनी रुचि तथा विश्वासके अनुसार धर्मसेवन, पवित्र आचरण, संयम, सेवा आदिके साथ-साथ परम विश्वासपूर्वक भगवत्प्रार्थना करें। प्रार्थनामें बहुत बड़ी चमत्कारमयी अमोघ शक्ति है।

२—वेदाध्ययन, वेदपारायण, धर्मग्रन्थपाठ, विष्णुयाग, रुद्रयाग, गायत्री-पुरश्चरण, रुद्राभिषेक, रुद्रीपाठ, महामृत्युञ्जयका जाप, पुराण-पाठ आदिके अधिक-से-अधिक आयोजन हों।

३—माता भगवतीकी कृपा प्राप्त करनेके लिये 'दुर्गा-सप्तश्लोकी' 'देव्यथर्वशीर्ष' दुर्गासप्तशतीका 'चतुर्थ अध्याय, 'एकादश अध्याय' तथा 'सिद्धकुञ्जिका-स्तोत्र'का पाठ करें-करावें तथा 'नवार्णमन्त्र'का यथासाध्य जप करें।

सम्पुटके मन्त्र ये हैं—

(क) यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
　　ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
　　नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु॥

(ख) या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
　　पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
　　तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥

(ग) देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
　　प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
　　त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥

(घ) देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
　　र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
　　उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥

(ङ) शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
　　सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(च) सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
　　भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥

(छ) सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
　　एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥

(ज) शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
　　घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥

(झ) सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
　　शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(ञ) रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
　　यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
　　तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्॥

४—श्रीमद्भागवतके सप्ताहपारायण अधिक-से-अधिक किये-कराये जायँ। वाल्मीकिरामायणके नवाह्नपारायण या सुन्दरकाण्डके पाठ किये-कराये जायँ। निम्नलिखित सम्पुट दिये जायँ तो अच्छा है।

श्रीमद्भागवतमें सम्पुट—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
　　यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
　　तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

श्रीवाल्मीकिरामायणमें सम्पुट—

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

५–श्रीरामचरितमानसके मासिक, नवाह, अखण्ड या यथारुचि यथासाध्य जिनसे जितना हो सके, पाठ करें-करावें।

निम्नलिखित सम्पुट दिये जायँ तो अच्छा है—

(१) राजिवनयन धरें धनु सायक।
भगत बिपति भंजन सुखदायक॥

(२) जपहिं नाम जन आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

(३) दीन दयाल बिरद संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा।
रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥

(५) गरलसुधा रिपु करहिं मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

६–गौओंको चारा, घास, भूसा, दाना खिलाया जाय।

७–गरीब, रोगी, दीन, बाढ़ या अकालपीड़ित, विधवा स्त्री, अनाथ बालक, विद्यार्थी आदिकी सेवा-सहायता की जाय।

८–श्रीनारायणकवच, अमोघ शिवकवच, रामरक्षा-स्तोत्र और संकटनाशनविष्णुस्तोत्रका पाठ संस्कृत जाननेवाले लोग स्वयं करें तथा करावें।

९–और कुछ भी न हो तो—

अपनी रुचि तथा श्रद्धाके अनुसार श्रीशंकरजीके 'नमः शिवाय,' भगवान् विष्णुके 'हरिः शरणम्' और श्रीगणेशजीके 'गं गणपतये नमः' मन्त्रका जप करें-करावें। भगवन्नामका कीर्तन अधिक-से-अधिक किया-कराया जाय।

षोडशनाम मन्त्र—'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' का यथासाध्य जाप करें।

अष्टग्रहीके समय देशभरमें अनुष्ठान हुए थे। उनका विचित्र फल हुआ तथा गत चीनके आक्रमणके समय भी 'कल्याण' में सूचना निकलते ही जगह-जगह भगवदा-राधन तथा देवाराधन होने लगा था। इस बार भी विशेषरूपसे होना चाहिये। इसका निश्चय ही बड़ा शुभ परिणाम होता है। *

५ अक्टूबर, १९६५ हनुमानप्रसाद पोद्दार

---

* 'कल्याण'के गत १०वें अङ्कमें भगवदाराधन तथा देवाराधनके लिये देशवासियोंसे अनुरोध किया गया था। हर्षका विषय है कि कई जगह यह पवित्र कार्य प्रारम्भ हो गया है। हमारे पास बहुत-सी सूचनाएँ आयी हैं। विष्णुयाग, सहस्रचण्डी आदिके आयोजन हो रहे हैं। अखण्ड नाम-कीर्तन, अखण्ड रामचरितमानस कई जगह हो रहे हैं। अभी सूचना मिली है कि ग्राम (मित्रपुर, सवाईमाधोपुर-राजस्थान) में श्रीरामचरितमानसके २९ अखण्ड पारायण किये गये हैं। हमारा 'कल्याण'के पाठकोंसे सादर अनुरोध है कि वे कृपापूर्वक स्वयं व्यक्तिगत रूपमें अपनी रुचिके अनुसार अनुष्ठान-आराधन करें, दूसरोंको विनयपूर्वक प्रेरणा दें तथा स्थान-स्थानपर सामूहिक रूपसे भी ऐसे छोटे-बड़े आयोजन हों। —सम्पादक

तुलसीके शब्द

(लेखक—डाक्टर श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम० ए०, डी० लिट्०)

'एक सखी सिय संगु विहाई—

जब फुलवारी देखने गयी तो उस राजा जनककी बसन्तभरी फुलवारीमें सर्वसौन्दर्य-निधान श्रीअवधविहारीजी-की माधुरीसे प्रेम-विवश हो गयी और लौटकर किशोरी श्रीजनकललीजीके पास अवाक् खड़ी हो गयी। उसकी दशामें अकस्मात् परिवर्तन देखकर सखियाँ उससे पूछने लगीं। इस सखीने मनमें सोचा कि अगर एक बातका उत्तर दूँगी तो दूसरी और बात मुझसे पूछी जायगी, रंगका वर्णन करूँगी तो आँखका प्रश्न होगा, आँखोंका सौन्दर्य बखान करूँगी तो कोई मुख-छवि पूछेगी, मुख-माधुरी वर्णन करूँगी तो कोई वेष-भूषा पूछेगी और फिर इस अत्यधिक प्रेम-विवश अवस्थामें इतना बोला भी किससे जायगा ? इसलिये इसने कहा—

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

इस उत्तरका मनोवैज्ञानिक रहस्य है। इस एक पंक्तिके छोटे उत्तरसे इसने सखियोंके अनेक भावी प्रश्नोंका अन्त कर दिया; अपनी कण्ठ-अवरुद्ध दशामें पचीसों प्रश्नोंके उत्तर देनेसे अपनेको बचा लिया और श्रीकिशोरीजीकी अवध-कुमारोंके देखनेकी लालसा तीव्र कर दी—मतलब इसका यह था कि स्वयं जाकर देखोगी तभी समझोगी। इस विचारकी पुष्टि एक अन्य सखीने यह कहकर कर दी कि—

अवसि देखिअहिं देखन जोगू।

तो जब श्रीकिशोरी जनकललीजी 'कुँवर दुइ' को देखने चलीं तब इस सखीको आगे करके चलीं। थोड़ी देर पहले कविवरने जिसे 'एक सखी' कहा था—

एक सखी सिय संगु बिहाई।

—वह अब 'प्रिय सखी' बन गयी।

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई।

कविवर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके इस प्रकार विशेषण अथवा नाम-परिवर्तनमें बड़ा चमत्कार है। उदाहरणार्थ पार्वती-प्रेम-परीक्षा प्रसंगको देखिये। महादेवजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके सप्तऋषि प्रेम-परीक्षा करने आये हैं।

बोले मुनि सुनु सैलकुमारी।

यहाँ पार्वतीजीको ऋषियोंने 'सैलकुमारी' कहकर सम्बोधन किया। वे उन्हें 'उमा' या 'गौरी' भी कह सकते थे। परंतु ऐसा न करके ऋषियोंने उनको 'सैलकुमारी' ही कहा। कारण कि 'गिरि जड़ सहज'—ऐसे जड गिरिकी कुमारी—शैलकुमारी अर्थात् हठीली, जडतावश दुःसाहस और 'चहत बारि पर भीति उठाई' वाली हठपर अड़ी हुई 'अविवेक'-सम्पन्न !!

देखहु मुनि अबिबेकु हमारा। चाहिअ सदा सिवहि भरतारा॥

इस हठीलेपनकी जडतासे विवश कुमारीके निमित्त 'सैल-कुमारी' नाम प्रयोग किया गया। परंतु प्रेम-परीक्षामें सफल होनेके उपरान्त वे जडतावश हठ धारण करनेवाली 'सैलकुमारी' नहीं रहीं। जिस भावसे बादमें हिमाचलने पार्वतीजीको महादेवजीको समर्पण किया।

गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी॥

अर्थात् 'भव बामा' जानकर, उसी भावसे प्रेरित होकर सप्तऋषियोंने पार्वतीजीको 'भवानी' नामसे सम्बोधित किया; क्योंकि ऋषियोंको पार्वतीजीके सत्यप्रेममें विश्वास हो गया था और वे जान गये थे कि ये हैं—

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥

इसलिये—

देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी॥

कहाँ पहले जड 'सैलकुमारी' और कहाँ बादमें 'जगदम्बिके भवानी' !!! कविवरने यह नाम-परिवर्तन अवसरके उपयुक्त करके काव्यमें चमत्कार भर दिया।

लंकाकाण्डका प्रसङ्ग है। श्रीरघुनाथजीके दूत बनकर अंगद गये हैं। राक्षसराजका दरबार लगा है। अंगदको देखकर रावण बोला—

कह दसकंठ कवन तैं बंदर।

निशाचर राजाने अंगदको बंदर कहकर सम्बोधन किया। राक्षसोंके लिये बंदर भक्ष्य थे। फिर बंदर छोटा जीव और राक्षस भीमकाय। इसके अतिरिक्त महान् अभिमानी दशशीशकी दृष्टिमें सिवा रावणके आदरका पात्र कौन हो सकता था !!! करुणानिधान प्रभु तकको तो वह तापस कहकर पुकारता था।

फलस्वरूप सम्पूर्ण रावण-अंगद-संवादमें अंगदके लिये कपि, जड़, कीस, खल आदि शब्द प्रयोग हुए। जैसे—

रे कपिपोत बोलु संभारी।
सुनि कठोर बानी कपि केरी।
कह कपि धर्मसीलता तोरी।
जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि।
धन्य कीस जो निज प्रभु काजा।
कह कपि तव गुन गाहकताई।
जौं असि मति पितु खाए कीसा।
सुनु सठ सोइ रावन बलसीला।
सठ अजहूँ जिन्ह के उर साला।
सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी।
रे कपि बर्बर खर्ब खल।
सठ साखामृग जोरि सहाई।
सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा।
भूप सुजस खल मोहि सुनावा।
पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू।
आन बीर बल सठ मम आगें।
रे कपि अधम मरन अब चहसी।
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें।

इस प्रकार जबतक रावण-अंगद-संवाद होता रहा, अंगदके लिये घृणासूचक, तुच्छ, निरादरपूर्ण शब्द प्रयोग होते रहे जैसे कीस, कपि, खल, मूढ़, प्रलापी। यहाँतक कि जब सब लोग हार गये और अंगदका पाँव न हटा तब भी कपि ऐसा छोटा नाम ही अंगदके लिये प्रयोग हुआ।

कपि बल देखि सकल हियँ हारे।

फिर रावण स्वयं—

उठा आपु कपि कें परचारे।

यहाँ भी कपि ऐसा छोटा तुच्छ भावमय नाम अंगदको दिया गया। परंतु जैसे ही त्रैलोक्यविजयी, महाभट राक्षसेश्वर अद्वितीय वीर राजा रावण अंगदके पाँवकी ओर बढ़ा कविवर श्रीतुलसीदासजीने अपनी काव्यकलाकी झलक दिखला दी और कहा—

गहत चरन कह बालिकुमारा।

युवराज अंगद जो अबतक कपि, कीस, मूढ़, खल नामोंसे सम्बोधित किये गये थे, दशशीशके अंगद-चरण-ग्रहण-प्रयासपर रावण-विजयी! अतुलित बलशाली बालिके सुयोग्य पुत्र 'बालिकुमारा' के नामसे सम्बोधित हुए! जिसने—

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।

ऐसा 'मण्डलीकमनि रावन' महापराक्रमी योद्धा जिसके पैर पकड़नेको झुके वह 'कपि या कीस' ऐसे तुच्छ ऐश्वर्य-रहित नामसे सम्बोधित किया जाय यह न्यायसंगत नहीं था। ऐसे अंगदके लिये तो ऐश्वर्य और पराक्रमसंयुक्त 'बालि-कुमारा' नाम ही उपयुक्त था, जिससे रावणकी पराजयकी ध्वनि निकलती हो। दशशीश रावण वही था न—

एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख।

—तो जिस बालिने रावणकी ऐसी दुर्गति की थी उसके पुत्रपर जो अपने पिता बालिके समान बल और बुद्धिमें था रावण कैसे विजय प्राप्त कर सकता था? इस प्रकार लगभग चालीस बार 'कपि' 'कीस' 'मूढ़' 'खल' ऐसे छोटे, तुच्छ निरादरसूचक, पराक्रमशून्य नामोंसे अंगदको सम्बोधित करनेके बाद रावणके अंगदका चरण पकड़ते समय पराक्रम-पूर्ण नाम 'बालिकुमारा'के प्रयोगसे इस प्रसंगमें चमत्कार आ गया है।

एक उदाहरण और लीजिये। जनकपुरमें पुष्पवाटिका-मिलन प्रसंग है।

परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंबु मातु भय मानी॥
धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितु बस जाने॥
देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥
जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति॥

सीताजी राजभवन चलीं, माता सुनयनाजीके पास चलीं जिन्होंने इन्हें गौरी-पूजनके लिये भेजा था। परंतु घर जायँ कैसे? वे तो 'परबस' हो चुकी थीं! उनका चित्त बड़ा क्षोभभरा था। उनका सहारा कौन था? अब किसकी शरणमें जायँ? अतएव—

गई भवानी भवन बहोरी।

एक बार पहले गौरीकी पूजा कर चुकी थीं—बड़े प्रेम और बड़ी भक्तिसे पूजा की थी।

पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा ।

और फिर—

निज अनुरूप सुभग बर मागा ।

परंतु यह 'निज अनुरूप सुभग बरु मागा' किसी विशेष वरके लिये प्रार्थना नहीं थी। यह तो 'निज अनुरूप' वरके लिये सामान्यरूपसे प्रार्थना थी। लेकिन अब उन्होंने 'निज अनुरूप' वर देख लिया था।

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥

इसलिये—

गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी॥

और गद्गद होकर उन्होंने गौरीकी बहुत सुन्दर स्तुति की। इस स्तुतिमें भवानीको 'गिरिबर राज किसोरी' कहकर सीताजीने उन्हें शम्भु-प्राप्तिके निमित्त की हुई प्रेम-तपस्याकी याद दिलायी, 'महेस मुख चंद चकोरी' कहकर प्रियतमकी मुखछबिके आनन्द-रसकी कभी तृप्त न होनेवाली लालसाका स्मरण दिलाया। 'मातु' कहकर अपनी शरणागतिका परिचय दिया और उनके वैभव और ऐश्वर्यकी प्रशंसा करके गौरीके सर्वशक्तिमान् होनेका अपना विश्वास प्रकट किया और कहा—

सेवत तोहि सुलभ फल चारी।

माता ! मैं तो एक ही फल माँगती हूँ। वरदायिनी ! तुम्हारे लिये तो चारों प्रकारके फल प्रदान करना आसान है और एक बार फिर 'पुरारि पिआरी' सम्बोधन करके भवानीको प्रियतम-मिलन-सुखकी याद दिला दी और फिर कहा—

देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥

मोर मनोरथ जानहु नीकें।

इतना कहते ही श्रीकिशोरीजीको श्रीअवधविहारीजीकी वह 'स्यामल मूरति' याद आ गयी। श्रीरघुनाथजीकी नख-शिख-शोभा याद आयी। पिता जनकका कठोर प्रण याद आया।

सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा।

और उनका दिल धड़कने लगा तथा दिलमें एक हूक उठी और आँखोंमें आँसू भर आये। तब 'अवरुद्ध कण्ठसे' उन्होंने कहा—

बसहु सदा उर पुर सब ही कें।

फिर कुछ धीरज धरके उन्होंने रुक-रुककर कहा—

कीन्हेउ प्रगट न कारन तेहीं।

इसके आगे वे कुछ न कह सकीं। उनकी वाणी रुक गयी। उनको वह 'मृदु स्यामल मूरति' याद आयी। वह वज्र-सा कठोर शिवधनुष याद आया। अपनी निस्सहाय निराशापूर्ण दशा याद आयी।

अस कहि चरन गहे बैदेहीं।

श्रीकिशोरीजीने गौरीके दोनों चरण अपने दोनों हाथोंसे जोरसे पकड़ लिये कि अब मैं इन्हें नहीं छोड़ूँगी और भवानीके चरण पकड़ते ही सीताजी बेहोश हो गयीं, 'बैदेही' हो गयीं ! जिन सुकुमारी ललनाका कविवर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कुछ पहले 'सीय' नाम दिया था उनको इन्होंने अब 'बैदेही' कर दिया; क्योंकि प्रेमकी अधिकतासे, निराशाकी अधिकतासे, मनोरथ पूर्ण होनेके संशयकी अतिसे सुकुमारी श्रीश्रीजनकलली बेहोश हो गयीं, 'सीय' बैदेही हो गयीं ! प्रेमविह्वल किशोरी श्रीजनकललीका इस स्थलपर 'बैदेही' से अधिक उपयुक्त कोई नाम नहीं हो सकता था।

नाम एक छोटी-सी बात है परंतु नामके सुन्दर चमत्कारका आनन्द कविवर श्रीतुलसीदासजीकी कलाद्वारा जो हमें प्राप्त होता है वह अद्वितीय है।

प्रमाद छोड़कर भगवान्‌को भजो

नित्य नयी आसक्ति, कामना, ममता नित नव-पाप।
नित्य अशान्ति, नित्य ही चिन्ता, नित्य शोक-संताप॥
बीत रहा अनर्थमय जीवन यों सारा बेकाम।
चेत करो, छोड़ो प्रमाद सब, भजो निरन्तर राम॥

बन्दा, रुद्राक्ष एवं आँवला—कुछ स्पष्टीकरण

फरवरी, ६५के कल्याणके अंक (३९/२) में पृष्ठ ७४८ पर डा० श्रीकैलाशनाथजी मिश्र, एम्० डी०, एच्० ए० (पता—पत्रालय कटारी, जिला वाराणसी; उ० प्र०) का एक लेख 'तंत्रमें वृक्षोंके चमत्कारी प्रयोग' छपा था। इस लेखमें प्रयुक्त 'बन्दा' शब्दका स्पष्टीकरण करनेके लिये अनेक पाठकोंके पत्र आये। इसी प्रकारसे 'रुद्राक्ष तथा आँवलेका प्रयोग' पर श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी (पता—१७ वीं, मोतीलालनेहरू रोड, इलाहाबाद; उ० प्र०) के विचार अगस्त, ६५ के कल्याणके अंक (३९/८) में पृष्ठ ११४३ पर छपे हैं, इसके बारेमें भी विविध जिज्ञासाएँ प्रकट की गयी हैं।

दोनोंका संक्षिप्त एवं यत्किंचित् स्पष्टीकरण निम्न लिखित है। अधिक जानकारीके लिये उनसे ही पत्र-व्यवहार करना चाहिये। उत्तर पानेके लिये पत्रके साथ डाक-टिकट भेजनी चाहिये।

बन्दा

बन्दाके सम्बन्धमें श्रीकैलाशनाथजीकी सूचना इस प्रकार है—बन्दा एक विशेष प्रकारका पौधा है, जो दूसरे वृक्षोंकी डालियोंपर बहुधा उत्पन्न होता है। सभी वृक्षोंके बन्दे एक ही प्रकारके होते हैं। इसे संस्कृतमें भी बन्दा ही कहते हैं। यह जिस वृक्षपर उत्पन्न होता है, उसीके बनाये भोजनपर अपना निर्वाह करता है, इसलिये परोपजीवी है। इसकी जड़ें दृष्टिगोचर नहीं होतीं। जिस स्थानपर यह उत्पन्न होता है, वह स्थान गोलाकार, ठोसरूपमें फूलने लगता है और उसमेंसे शाखाएँ और पत्तियाँ निकलती हैं। ये शाखाएँ तथा पत्तियाँ मूल वृक्षकी शाखाओं और पत्तियोंसे नितान्त भिन्न प्रकारकी होती हैं। इन शाखाओंमें लाल रंगके लंबे पतले गुच्छेदार फूल आते हैं। बचा बन्दाका अर्थ नवीन छोटा बन्दा है, जो बहुत दिनका न हो। इसी प्रकार युवा तथा वृद्धका भी अर्थ है। दत्तात्रेय मन्त्रका जप दस सहस्र करना चाहिये—किसी शिवालय, श्मशान या नदीके तटपर। घृतका दीप, अगरबत्ती, गंध, पुष्प इत्यादि भी रखना चाहिये। यन्त्र-मन्त्र जगानेकी वेला सूर्य या चन्द्र-ग्रहण और दीपावली है। यन्त्रको ब्राह्मण जातिके (श्वेत-रंगके) भोजपत्र पर अष्टगंध एवं अनारकी कलमसे लिखना। मुखमें मिश्री धरके पश्चात् उसकी पूजा करके पहनना। मन्त्र-यन्त्र (उपर्युक्त) से तान्त्रिक क्रियाएँ शीघ्र सिद्ध होती हैं।

रुद्राक्ष तथा आँवलेका प्रयोग

श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी लिखते हैं कि रुद्राक्ष एकसे लेकर चौदहमुखीतक होते हैं। उनके नाम और मन्त्र शिवपुराणाङ्कके विद्येश्वर-संहिताके पचीसवें अध्याय (कल्याणके संक्षिप्त शिवपुराणाङ्कके ७० तथा ७१ पृष्ठों) में दिये हुए हैं। जिज्ञासु लोग वहाँपर देख सकते हैं। रक्तचाप बढ़नेपर या कम होनेपर नमक तथा घी बिल्कुल छोड़ देना चाहिये। रुद्राक्ष-धारण दोनों प्रकारके रक्तचापोंको ठीक करता है। मैंने जटामासीका सेवन नहीं किया; क्योंकि उसकी आवश्यकता नहीं पड़ी। रक्तचाप होनेपर भोजन बहुत हल्का करना चाहिये और रात्रिमें सोनेसे पहिले तीन घण्टा पूर्व हल्का भोजन कर लेना चाहिये। न मेरी रुद्राक्षकी दूकान है और न मैं किसीको जानता हूँ, जहाँसे मँगाया जा सके। अतः माला और रुद्राक्ष लोग ठीक समझकर खरीदें। रुद्राक्ष बाँहमें यन्त्रकी तरह बाँध सकते हैं अथवा माला—ऐसे पहिने, जो हृदयसे स्पर्श करती रहे। सदा शंकरजीका ध्यान रखना चाहिये और उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे आरोग्य-प्रदान करें।

मैं कोई डाक्टर नहीं हूँ। अतः लोग अपना हाल मुझे न लिखें। आँवलेके विषयमें मैंने साफ लिख दिया है, उसीका विवरण बार-बार पूछना समुचित नहीं है। जहाँसे उचित समझें, वहींसे खरीदना चाहिये। रक्तचापमें कई लोगोंने नींद न आनेकी बात लिखी है। मैंने तो केवल राम-नामके ही स्मरणसे इस व्याधिको दूर कर दिया। लोगोंको चाहिये कि निरन्तर राम-नामका स्मरण करें तब नींद अवश्य आयेगी।

सर्पगन्धाकी गोलियाँ हर डाक्टर या ओषधि-विक्रेताके यहाँ मिल सकती हैं। सर्पगन्धाकी गोलियोंका सेवन वैद्य या डाक्टरोंके कथनानुसार ही करना चाहिये।

मोतियाबिंदुनाशक सुरमा

[कुछ प्रश्नोंका उत्तर]

(लेखक—श्रीरवीन्द्रजी अग्निहोत्री एम्० ए०, शिक्षा-महाविद्यालय वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर)

मोतियाबिंदुनाशक सुरमा तैयार करनेकी विधिका और तैयार सुरमा प्राप्त करनेका जो उल्लेख मैंने अप्रैल मासके 'कल्याण'के पृष्ठ ८८९ और ८९० पर किया था, उस सम्बन्धमें स्वास्थ्य-भण्डारके पास तथा मेरे पास सहस्रोंकी संख्यामें पत्र आये। यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उक्त सूचनाने अनेक पीड़ितोंकी आवश्यकताकी पूर्ति की। अतः इस अति उपयोगी सूचनाको पत्रमें स्थान देनेके लिये आदरणीय सम्पादकजी धन्यवादके पात्र हैं। सुरमाके सम्बन्धमें पाठकोंने अनेक प्रश्न किये हैं, जिनमेंसे कुछ सामान्य प्रश्नोंका उत्तर यहाँ प्रस्तुत है—

१—सुरमेका प्रयोग कितने समयतक किया जाय? इसका निश्चित उत्तर तो हर रोगीकी स्थितिपर निर्भर है, पर सामान्य रूपसे इतना जान लेना आवश्यक है कि मोतियाबिंदु एक दुरारोग्य बीमारी है, अतः दीर्घकालतक चिकित्साकी आवश्यकता है। लगभग एक वर्षतक निरन्तर सभी निर्देशोंका यथावत् पालन करते हुए सुरमेका प्रयोग करना चाहिये। हाँ, यह सुरमा आपको लाभ कर रहा है या नहीं—यह आपको दो-तीन मासके प्रयोगसे ही स्पष्टरूपसे मालूम हो जायगा।

२—यह सुरमा मोतियाबिंदुकी किस हालतमें लाभ करता है? मोतियाबिंदुके पक जानेपर इससे लाभ नहीं होता। पकनेसे पूर्वकी हर हालतमें लाभ करता है। रोगका जैसा वेग होता है, जितना रोग बढ़ चुका होता है, उसी अनुपातसे शीघ्र या विलम्बसे लाभ होता है।

३—काले मोतियाबिंदुमें इस सुरमेसे लाभ नहीं होता।

४—जिस आँखका आपरेशन करा चुके हों, उस आँखमें सुरमेका व्यवहार नहीं करना चाहिये।

५—जिस आँखमें मोतियाबिंदु हो केवल उसी आँखमें इसका प्रयोग करें; क्योंकि यह सुरमा केवल मोतियाबिंदुके लिये हितकारी है अन्य रोगोंके लिये नहीं। अच्छी स्वस्थ आँखमें लगानेसे हानि भी कर सकता है।

६—एक रोगीका तो चश्मा लगानेका अभ्यास जाता रहा—ऐसा मैंने केवल मोतियाबिंदुके रोगीके विषयमें लिखा है। यह भी केवल एक ही उदाहरण है। उस रोगीने इस सुरमेके प्रयोगके अतिरिक्त मोतियाबिंदु-नाशक हवनसामग्रीसे हवन भी किया और सभी निर्देशोंका यथावत् पालन भी किया। लगभग एक वर्षतक यह क्रम चलाया। अतः निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता कि चश्मा लगानेकी आदत छूट जानेका कारण इन सबका समन्वित प्रभाव था, या इनमेंसे किसी एकका प्रभाव था अथवा एक आकस्मिक घटनामात्र थी।

७—सेवनविधिमें दिये निर्देशोंका पालन करके वे लोग भी लाभ प्राप्त कर सकते हैं, जो मन्दहृष्टि आदि रोगोंसे ग्रस्त हैं।

८—बहुत-से लोगोंने हरी घासपर भ्रमण करना और गोदुग्ध प्राप्त करना असम्भव बताया है। यह ठीक है कि आजके शहरी जीवनमें इन चीजोंका प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है, पर विचारणीय यह है कि प्रकृति तो हमारी कृत्रिम सीमाओंकी परवा नहीं करती। जो चीज हमारे रोगको दूर करनेमें सहयोगी है, उसे प्राप्त करनेके लिये हर प्रकारका प्रयत्न करना ही चाहिये, यदि हम रोग दूर करना चाहते हैं। जिन साधनोंको हम नहीं जुटा पायेंगे, उनका लाभ हमें प्राप्त नहीं होगा। उन साधनोंका कोई विकल्प नहीं। शहरोंमें प्रायः पार्क तो हैं ही, हरी घास वहाँ मिलेगी। 'गायका दूध और सपूत बड़े भाग्यसे मिलता है'—ऐसी लोकोक्ति है। पुरुषार्थसे भाग्य बनाइये। दूर जाना पड़ेगा, समय लगाना पड़ेगा, पर दूध मिल जायगा।

९—क्या वस्ति-कर्म (एनिमा) आँतोंको हानि पहुँचा सकता है? आँखके मोतियाबिन्दुका वस्ति-कर्मसे क्या सम्बन्ध? वस्ति-कर्मके स्थानपर रेचक औषधियोंका प्रयोग कर लिया जाय? इनके उत्तरके लिये विस्तृत विवेचना अपेक्षित है जिसका यहाँ अवकाश नहीं। यह विवेचना आरोग्यशास्त्र, आयुर्वेदिक-प्राकृतिक चिकित्सा आदि पुस्तकोंमें देखें। यहाँ केवल यह बता देना पर्याप्त होगा कि

पूज्य पिताजी [स्व० डा० श्रीकुन्दनलालजी अग्निहोत्री एम्० डी० (लंदन), मेडिकल अफसर टी० बी० सेनेटोरियम] ने पूरे पाँच दशकतक इस सम्बन्धमें लाखों रोगियोंपर परीक्षण करनेके पश्चात् इसे चिकित्साका आवश्यक अङ्ग बनाया। अतः हानिकी शंका भी न करें। हाँ, नियम-विरुद्ध व्यवहार करनेपर अवश्य ही हानिकी सम्भावना हो सकती है। रेचक ओषधि वस्ति-कर्मका पर्याय नहीं। वस्ति-कर्मद्वारा मोतियाविंदुके मूलपर आघात किया जाता है। पेटकी शुद्धि आँखके रोगोंमें भी परम आवश्यक है।

१०—कलमी शोराको अन्य भाषाओंमें किन नामोंसे पुकारते हैं, इसकी मुझे जानकारी नहीं हो सकी। आभूषणोंको गलाने या सफाई करनेमें प्रायः स्वर्णकार भी इसका प्रयोग करते हैं।

एक निवेदन

इस वर्ष मार्च और अप्रैलके महीनोंमें अप्रत्याशित-रूपसे वर्षा और उपलवृष्टि होनेके कारण वनस्पतिकी विशेष हानि हुई। नीमके फूल एक बड़ी मात्रामें पकनेसे पूर्व ही नष्ट हो गये। हम जितने फूलोंका संचय कर सके और उनसे जितना सुरमा तैयार हो सका, वह सब बँट गया। तैयार सुरमा प्राप्त करनेके लिये इच्छुक व्यक्तियोंके पत्र अभीतक हमारे पास आ रहे हैं, पर सुरमा स्टाकमें न होनेके कारण हम सुरमा वितरित करनेमें असमर्थ हैं। हमारे पाठकोंमेंसे किन्हीं सज्जननें यदि वह सुरमा बाँटनेके लिये भी तैयार किया हो तो वे सूचित करें ताकि इच्छुक व्यक्तियोंको उनका पता मिल जाय। यदि किन्हीं सज्जनने नीमके फूल इकट्ठे किये हों और किसी भी कारणसे सुरमा तैयार न कर सके हों तो वे यदि कृपापूर्वक डाक-पार्सलद्वारा नीमके फूल हमारे पास भिजवा दें तो हम सुरमा तैयार कराकर पीड़ितोंको दे सकेंगे। पार्सलका डाकव्यय हम देंगे।

तुलसीदासजीका मुख्य प्रतिपाद्य— श्रीराम-नाम

(लेखक—श्रीरामग्रहीप्रसादजी)

गोस्वामी तुलसीदासजीका मुख्य प्रतिपाद्य श्रीराम-नाम ही है। इसलिये सम्पूर्ण तुलसी-साहित्य-सागरका मन्थन करनेके बाद उससे श्रीराम-नामका ही मधुर और अक्षय नवनीत निकलता है। अपने रामचरितमानसके प्रारम्भमें ही आपने अपना मुख्य प्रतिपाद्य बतला दिया है—

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥

रामायणको समाप्त करते हुए भी अपने इस मुख्य प्रतिपाद्यका उल्लेख किया है—

मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

'नम्यतेऽभिधीयतेऽर्थोऽनेनेति नाम' इस विग्रहके अनुसार नाम ज्ञानमय होता है। इसलिये राम-कथा भी राम-नामके भीतर ही आ जाती है। सच्ची बात तो यह है कि समूची राम-कथा राम-नामका ही विस्तार है। इसलिये नामनिष्ठ साधक रामकथाका भी श्रवण, कीर्तन और चिन्तन-मनन करता है। यों तो नामार्थके विस्तारके भीतर चारों वेद और अठारहों पुराण भी आ जाते हैं। श्रीअयोध्याजीके साकेतवासी संत श्रीयुगलानन्यशरणजी लिख गये हैं—

सीताराम-नामही में बेद संहिता पुरान,
ग्यान, ध्यान, भावना समाधि सरसतु हैं।
सीताराम-नामही में तत्व, भक्ति-जोग, जग्य,
पर ब्यूह, विभवस्वरूप परसतु हैं॥
सीताराम-नामही में पाँचों मुक्ति, मुक्ति बर,
दायक विचित्र एक रस बरसतु हैं।
युगल अनन्य सीताराम-नामही में मोद,
बिसद बिनोद बार बार परसतु हैं॥

विनय-पत्रिकामें तुलसीदासजी शपथपूर्वक कहते हैं—

संकर साखि, जो राखि कहौं कछु, तौ जरि जीह गरौ।
अपनो भलो रामनामहि ते तुलसिहि समुझि परौ॥

भगवान् शंकरको साक्षी देकर राम-नामको अपना कल्याण-साधक बतलाना गोस्वामी तुलसीदासजीकी नामनिष्ठाको निर्विवाद कर देता है। यह प्रमाणित कर देता है कि

गोस्वामी तुलसीदासजीको रामरूपमें जितनी निष्ठा है, उससे अत्यधिक राम-नाममें निष्ठा है। ये जितने रामनिष्ठ हैं उससे अधिक नामनिष्ठ हैं। गीतावलीमें भी आपने बतलाया है—

कसम खाइ तुलसी भनी।

आपकी वैराग्य-संदीपनी बोल रही है—

सपनेहूँ बराइ कै जु मुख निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मोरें तन को चाम॥

आपकी दोहावली कहती है—

नाम गरीब निवाज को, देत राज जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं, घुरबिनिया की बानि॥

आपने अपने बरवै-रामायणमें लिखा है—

कलि नहिं ग्यान विराग न जोग समाधि।
रामनाम जपु तुलसी नित निरुपाधि॥

कवितावलीमें आप कहते हैं—

श्रुति रामकथा मुख राम को नाम
हिए पुनि रामहिं को थलु है।
सब की न कहौं तुलसी के मते
इतनो जगजीवन को फलु है॥

इसके बाद उसी कवितावलीमें आप डंकेकी चोट बोल रहे हैं—

तुलसी जो सदा सुख चाहिय तौ,
रसना निसि-बासर नाम रटौ।

रामचरितमानससे नामनिष्ठाका उदाहरण लीजिये—

(क) यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु विचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥
(ख) नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
राम नाम अवलंबन एकू॥
(ग) कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना।
एक अधार राम गुन गाना॥

रामचरितमानसके अन्तमें आपका जो अन्तिम दोहा है उसमें भी नामनिष्ठाकी ही आपकी अन्तिम अभिलाषा अभिलक्षित होती है। यह अन्तिम अभिलाषा राम-नामके समर्थनमें सबसे प्रबल प्रमाण है, जो नामाराधकोंके लिये हृदयकी मंजूषामें सहेज रखनेकी वस्तु है। गोस्वामीजी अपने इष्टदेवसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

इस दोहेका अन्तिम सम्बोधन है 'राम' और अन्तिम उपमा है 'लोभिहि प्रिय जिमि दाम'।' अब इस अन्तिम सम्बोधन और उपमापर विचार कीजिये—

राम शब्द राम-नामका अर्थ प्रकट करता है; क्योंकि गुरु वशिष्ठजीने दशरथनन्दनजीका यही नामकरण किया था—

सो सुख धाम राम अस नामा।
अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

इससे स्पष्ट ही राम सम्बोधनसे राम-नामका संकेत परिलक्षित हो जाता है। इसके लिये उपमा है 'लोभिहि प्रिय जिमि दाम' अर्थात् जैसे किसी लोभान्धको अर्थमें निष्ठा होती है, उसी प्रकार श्रीरामनाममें अपनी निरन्तर निष्ठा हो। इस प्रमाणसे यह सुस्पष्ट हो गया कि गोस्वामी तुलसीदासजीने नाम-निष्ठाके लिये ही अपनी अन्तिम प्रार्थना की है।

ऊपर उल्लिखित प्रमाणोंसे पूर्णतः यह प्रमाणित हो गया कि तुलसी-साहित्यका मुख्य प्रतिपाद्य श्रीरामनाम ही है।

यह श्रीराम-नाम आप भावसे लीजिये या कुभावसे, क्रोधसे लीजिये या आलस्यसे, प्रत्येक परिस्थितिमें मङ्गलमय एवं कल्याणकारी है—

भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

और,

तुलसी अपने राम को रीझि भजो या खीज।
उलटो सीधो जामिहैं, खेत परो सो बीज॥

ऐसे महामहिमशाली और लोक-परलोकमङ्गलकारी श्रीराम-नामके जप, श्रवण और कीर्तनके लिये हम आज ही नहीं, अभी-अभी तुलसीदासजीके शब्दोंमें यह अटल प्रतिज्ञा कर लें—

अब लौं नसानी अब ना नसैहौं।
× × ×
पायो नाम चारु चिन्तामनि उर कर तें न खसैहौं॥

श्रीभगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम्।
पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम्॥
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

'मधुरोंमें भी मधुर, मङ्गलोंमें भी मङ्गल और पावनों (पवित्र करनेवालों) में भी पावन केवल हरिनाम ही है। हरिनाम, हरिनाम, केवल हरिनाम ही कलियुगमें गति है; अन्यथा गति नहीं है, गति नहीं है, गति नहीं है।'

बड़े ही हर्षकी बात है कि 'कल्याण' में प्रकाशित प्रार्थनाके अनुसार भगवत्प्रेमी पाठक-पाठिकाओंने पिछले वर्षोंकी भाँति गतवर्ष भी उत्साह एवं प्रेमके साथ नाम-जप स्वयं करके तथा दूसरोंसे करवाकर महान् पुण्यका सम्पादन किया है। 'कल्याण' की प्रार्थनापर इस वर्ष जो जप हुआ है, उसके सम्बन्धमें निम्नलिखित निवेदन है—

१–गतवर्ष ११३७ स्थानोंसे आयी हुई सूचनाएँ दर्ज हुई थीं, इस वर्ष २१४७ स्थानोंसे सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं और पूरे सोलह नामोंके मन्त्रका—२८,६२,७२,७०० जप हुआ है। इसकी नाम-संख्या होती है—

४,५८,०३,६३, २०० (चार अरब, अट्ठावन करोड़, तीन लाख, तिरसठ हजार दो सौ)।

२–इस वर्ष भी केवल भारतवर्षमें ही नहीं, बाहर विदेशोंमें भी जप हुआ है।

३–उपर्युक्त संख्यामें केवल सोलह नामके महामन्त्रकी ही संख्या जोड़ी गयी है। भगवान्के अन्यान्य नामोंका भी जप हुआ है, वह इस संख्यासे पृथक् है।

४–बहुत-से भाई-बहिनोंने जप अधिक किया है, सूचना कमकी भेजी है और कुछ नाम-प्रेमियोंने तो केवल जप करनेकी सूचना भर दी है, जपकी संख्या लिखी ही नहीं है।

५–कुछ भाई-बहिनोंने केवल जपकी संख्या ही नहीं लिखी है, उत्साहवश भगवन्नाम भी लिखकर भेजे हैं, यद्यपि हमारे पास लिखित नामोंकी सूचना प्रकाशित करनेकी उपयुक्त सुविधा नहीं है। इसके लिये क्षमा-प्रार्थना है।

६–बहुत-से भाई-बहिनोंने आजीवन नाम-जपका नियम लिया है, इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

७–स्थानोंका नाम दर्ज करनेमें यथासाध्य सावधानी बरती गयी है। इसपर भी भूल होना एवं कुछ स्थानोंके नाम छूट जाना सम्भव है। कुछ नाम रोमन या प्रान्तीय लिपियोंमें लिखे होनेके कारण उनका नागरी रूपान्तर करनेमें भूल रह सकती है। इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

स्थानोंके नाम इस प्रकार हैं—

अकबरपुर, अकोला, अखलाशपुर, अखैपुर, अखैयापुर, अगई, अगनाकोल, अगवानपुर, अगेथुवा, अग्रेसर, अचलजामू, अछोरा, अजनाइतारा, अजबपुरा, अजमेर, अझुई, अटका, अठेहा, अतरसुमा, अतूपुर, अतौला, अदोनी, अपहर, अब्दुल्लागंज, अमियाखुर्द, अमऊजासरपुर, अमरावती, अमरौधा, अमलनेर, अमलापुरम्, अमहट, अम्बालपुरम्, अमाए, अमावाँयूफी, अमाहा, अमिलिध, अमिलियाँकलाँ, अमिलियाँ खुर्द, अमिलिया बेसनिहा, अमीनगर सराय, अयोध्या, अरई, अरसारा, अरैला, अलानुरु, अलियाबाद, अलीगढ़, अलीगंज, अलीपुर, अवधपुर, अवस्थीपुर, अशरकपुर, अस्कोट, अस्कोट तीसला, असरीखेड़ा, असाव, असीथर, अहमदनगर, अहमदपुर, अहमदाबाद, अहरन, अहरौरा, अहिबन, अहिरानी, अहिरौली, अक्षयपुर, आगरा, आटौन, आदमपुर, आदर्शनगर, आदिग्राम, आदिलपुर, आनंदताण्डवपुरम्, आबगिलासायर, आमी, आमी अकिलपुर, आमी असिल, आयराखेड़ा, आर्यनगर, आर० डीह, आरात्राथा, आरियरबरबोटे, आलमपुर, आँवलियासण, आँवली, आँवा, आशापुर, आशोगीपुर, आऊगाँव, आसासोद, इच्छापुर, इच्छेबस्ती, इचलकरंजी, इचौली, इछूरी, इटकी, इटावा, इटवामलनापुर, इटौजा, इन्दपुर, इनारस, इब्राहिमपुर, कदई, इब्राहिमबाद, इम्डाला, इमादपुर, इमामनगर, इरूल, इलाहाबाद, इसकिल, इस्टगोदावरी, इस्माइलपुर, इसायल-नगर, इस्सैलामपुर, इसहाकपुर, इसौली, ईडर, ईटगाँव, ईसरदा, ईसागढ़, उज्जैन, उजानगंगोली, उड़ियानपुर,

उतरदहा, उतुरी, उतैकापुर, उदयपुर, उदयपुर-देहरा, उदयपुरा, उद्दाहपाली, उधरपुर, [illegible]ुई, उनितमन्दिर, उना, उपरीपारा, उपाध्यायपुर, उसधा, उमर-भार, उमापुर, उमाडी, उरईरा, उस्मानपुर, उसकामक, उसरी, उसुरा, ऊँझा, एकडंगा, एटाह, ५६ ए० पी० ओ०, एरियाकोड, एरंडोल, ऐंचर, ऐनपुर, ओखलढूँगा, ओखा, ओड़गी, अंगूरकी, अंचरवाड़ी, अंजनासिंगी, अंजरौली, अंधेरी, अंबरपुर, अंहरन-सुबंश, ककढ़िया, ककरहिया, ककोढ़ा, कच्छीबलिहारी, कछारीगाँव कचनार, कजरा, कटक, कटवर, कटघरा, कटनी, कटवसियाँ, कटावाँ, कटैया, कठोरिया, कढ़ंगी, कड़विन्धा, कदई, कंदईकला, कदवासा, कन्दैला, कन्देली, कन्नोह, कन्हईपुर, कन्हौली-गजपति, कनवाड़ी, कनावा, कनेहटी, कपसा, कपासन, कपासी, कपूरथला, कमईपुर, कमलापुर, कमासिन, कयोट-गामा, करनपुर, कर्नलगंज, करमोली, करेरू, करौंदी, करवाड़, करसैना, कराँटी, करीमनगर, करेली, करोग, करौली, कला (पालमपुर कांगड़ा), कल्याण, कल्याणपुर, कल्देर, कलकत्ता, कलवामऊ, कठवल, कवडव, कवँरपुर, कवलास, कवलूर, कविलासपुर, कसवास्थाना, कसिला, कसेहिया, कांकरोली, काकवारा, काँगड़ा, कागुपाडु, कांचरापाड़ा, काटजू जावरा, काँटा, काँटाफोड़, कादीपुर, काँधी, कानपुर, कान्नानोर, काँपा, काम्यवन, कामठी, कामदेवपुर, कामलगंज, कामाखी, कामापुर, काली, काली-पहाड़ी, कालीयांग, कालूपुरपंच, कालोनी ब्लाक नं० ५६, काशीके घरेवा, किछर, किटावा, किनवट, किशोरिया, कीरी, कीलायूर, कीन्हूपुर, कचेरा बाजार, कुंजरोद, कुटला, कुट्टा, कुट्टा सुहागपुर, कुट्टी, कुदुम-डोला, कुदुम्वा, कुठालगाँव, कुठारागाँव, कुड़वा, कुड़ौली, कुतमाला, कुतुबपुर, कुन्दुर्खा-खुर्द, कुम्हाई, कुम्भकोनम्, कुम्हेर, कुमारधुबी, कुलहावगहा, कुमासी, कुर्सी, कुरारा, कुरेठा, कुरेमार, कुहरा, केविह्नी, केरिया बझना, केवटगामा, केशवपुर, केशोगाँव, कैकलूर, कैथवली, कैथा, कैमला, कैमोर, कैलगर, कोइम्बतुर, कोकेर (वस्तर), कोचीन, कोजावाड़ा, कोझाकोट्टुर, कोटडीहासरैया, कोटमी, कोटवा-जमुनीपुर, कोटवामहमदपुर, कोटेतरा, कोठाली, कोडिमंगलम्, कोदईपुर, कोदरिया, कोदीगवली, कोपागंज, कोरऊ, कोरातगिरि, कोरीघाट, कोरैया जंगल, कोरोराघवपुर, कोलकुलपल्ली, कोहीगवली, कौदँनियाँ, कंजड़ टोला, कंटागाँव, कंलोह, कृष्णापुर, खर्गीपुर, खजुरी-करौंदी, खजुहा-रूकीपुर, खटरी, खटीमा, खड़वा-धावा, खड़ेर-कीकतपुर, खदरा, खप्पिहाकलाँ, खंभालिया, खम्हरिया, खम्हौती, खरकपुर, खरकलाँ, खरगपुर-अरैसारा, खरगोन, खरदा, खरिकहिया, खरिकार, खरैला, खरोसा, खलारी, खवासपुर, खातौली, खानापुर, खावी, खारोवा, खालिसपुर, खास, खासपट्टी, खाससांडिया, खिदिरपुर, खीरी, खीलचीपुर, खुर्द-विष्णुपुरा, खुर्दहा, खुरई, खुरजा, खुर्मा, खुघानी, खुसनामपुर, खुसरूपुर, खेना, खेरली, खेरागढ़, खैंचिला, खैरावाद, खोरी, खोधवा, ग्वालियर, गछौंपुर, गजउराय मानिकपुर, गजरिया, गजलकोंडा, गजेथुवा, गठया, गढवा, गढ़वाल, गढ़ा, गण्डूर, गणपति अग्रहारम्, गणेशपुर, गणेशपुर-रहेली-३५, गणेशपुरा, गड़ौली, गदियाना, गनपारी, गनापुर, गनेशघाटी, गभड़िया नाला, गया, गयासपुर, गरम्बा, गराना, गरियाबन्द, गलिबहा, गसदूदीपुर, गाडरवारा, गादिया, गांधीधाम, गांधीनगर, गालीपुर, गिरधरपुर, गुजरा, गुजरामऊ, गुडेवल्लूर, गुडियारी, गुणगाँव, गुण्टूर, गुमा, गुरसहायगंज, गुरेगाँव, गुरैया, गुलाबपुर, गुलालपुर, गुलाहिमपुर, गोकुला, गोगमऊ, गोझवार, गोठवा, गोठवारी, गोंडवा, गोण्डा, गोनौन, गोपपुर, गोपालपुर, गोवर्द्धनपुर, गोभाडीह, गोमारिया, गोमो, गोवदावली, गोविन्दगढ़, गोविन्दपुर, गोविन्दी, गोलाघाट, गोसी असनौर, गौरा, गौंदा कुमियान, गौरा रामपुर, गौरा सैदखानपुर, गौरियापुर, गौहनिया नैपाल-सिंह, गौंहरा, गंगापुर, गंदानाऊ, घनोरा, घरहाँ खुर्द, घाटमपुर, घासीपुर, घोघरा, घोरहवा, चकटेरी, चकरजई, चकराता, चकरूपुर, चकतेंदुआ, चकपकड़ी कैमठ, चंकिया, चकौंध, चटिमा, चन्दपुर, चन्दा, चन्दौर, चन्दौसी, चनपतिया, चनायनवान, चमरूपुर, चमुटवाँ, चमोली, चरकवा, चरथई, चहरामी, चाईबासा, चांग, चांचौड़ा, चाँदपुर, चान्दूर, चान्दो, चानी, चान्ना, चाणसा, चींगलौरी, चित्तरंजन, चितराँव, चिन्तापल्ली, चिरोगाँव, चित्तौड़गढ़, चितौरा, चिरैया, चिरौधा, चिरौली, चिलविली, चिलवरिया, चित्रकाट, चीचली, चीथरौली, चुनहा, चुनार, चैनपुर, चौकड़ी, चोढ़ली, चौरिया वरियारपुर, चौकप्रान्त एटा, चौधरी टोला,

चौपरिया, चौबेपुर, चौत्रोली, चौसा वस्ती, चौसावाजार, चौहट्टा, चंदापुर, चंदीगढ़, चंदोपुर, चदेरी, चंदौली, छतरपुर, छतौना, छपकहिया, छपरे, छापी, छुई, छोटका विसावाँ, छौलापुर, जगदीशपुर, जगवाशंकर, जगाधरी, जज्जौर, जवरगंज, जबलपुर, जबुशर, जम्वाड़ी, जमालपुर, जमालीपुर, जमुनियामऊ, जमोली, जयन्तीपुर, जयपुर, जयराजपुर, जरईकलां, जरगवाँ, जरियागुम्मा, जरुवाड़ी, जरेरा, जशपुर, जहाँगीरगंज, जहाँगीरावाद, जहाँगीरपुर, जहाजपुर, जागपुर, जादीपुर, जामठी, जामनगर, जागनेर, जाफरावाद, जालगाँव, जावरा, जीरादेई, जुन्हैटा, जुन्हैया, जुडैयापुर, जुड़ारा, जुवादा, जूड़पटी, जूनागढ़, जेऊरकर, जेतलपुर, जैपुर, जोधपुर, जोधनगर, जोरियम, जोरावर डीह, जोहन, जोराखेरा, जौरासी खालसा, जंदियाली, झमराखाँड़, झरिया, झलियाही, झलोखर, झाबुआ, झारसुगुडा, झालरापाटन, झालापुर, झाँसड़ी, झाँसी, टकसाल, टड़वा, टरड़सा, टाड़ापारा, टिकुरहिवा, टिमरनी, टिलैतगाँव, टीकमगढ़, टीकर, टीगरिया, टुकरियासर, टूण्डला, टेरी, टंकारिया, ठ्योंगा, ठठिया, ठीकहाँ-भवानीपुर, ड्योढ़ी, डफलपुर, डलहौजी छावनी, डँड़वा, डाईडिहा, डावच, डाल्ली-राजहरा, डिकौली, डिहवा, डीलीगिरधर, डीलीसरैया, डीह, डीहमरथी, डुमटहर, डुमरिया, डुमरिया खुर्द, डुहिया, डूँगरपुर, डोमियारा, डोम्हाटोला, डेरामूसी, डेलुवाभारी, डेहरियावाँ, डेहवा, डौंडी, ढकवा, ढकुलहवा, ढविया, तडग्राम, तपोवन श्रीधर्मारण्य, तमेहड़ी, तरयाँ, तरवाड़ी, तल्लादन्या, तलैयालैन, तलैयाताका, तांजौर, ताडवेरोली, तारानारी, तारालाही, तालणपुर, तालाडीह, नाल्लैड़, तावढोली, तियरा, तिरछे, त्रिवारीपुर, तिलकपुर, तिलसहरी, तिंवरी, तिंवारीपुर सुजैना, तीटकनगर, तितिलागढ़, तीरगाँव, तिरीचिरापल्ली, तीरुवारूर, तुंगणी, तुर्तीपुर मिलक, तुनिहा, तुरंग, तुलसीपुर, तेजयापुर, तेंध, तेधाखुर्द, तौधिकपुर, थम्हवारगरी, थाना, थौरी, दक्खिन-गाँव, दखिनवारा, दड़माड़, दन्तेवाड़ा, दवकीहरा, दवधुवा, दवयाना बंगला, दमदमकेंट, दमोदरा, दरियापुर, दरीवा दलकी, दलपतपुर, दयालवन्द, दलौदा, दहलवा, दहिडा, दहियावाँटोला, दक्षिणपारा, दाउतपुर, दाऊदनगर, दाँडेगाँव, दामोदरपुर-मठ, दिखौली, दिगाँव, दिल्ली, दिवानी मिमिल, दिवेआगर, दीग, दीव, दीपैरा, दुर्ग, दुर्गाडीह, दुर्गापुर, दुर्गावती, दुजाना, दुदर्नी, दुबौली, दुमका, दुहचीपुरा, दुलारपुर, दूदवी, दूधवारवारा, दूवेपुर, देल्ही, देवई, देवजरा, देवड़ी, देवदासपुर, देवनगर, देवपारा, देवरा, देवराकोट, देवधा, देहरादून, देहलीवाजार, देहली मुबारकपुर, दोईदा, दोतरु, दोन दोलतपुर, दोस्तपुररंधू, दौनश, दौनौं, धनगाँवा, धनजई, धनपतगंज, धनवार, धनवाही, धनेश्वरपुर, धनैचा, धम्मौर, धमथुवा, धमधरा, धमनापायक, धमौलिया, धर्मपुर, धर्मौपुर, धरान (नेपाल), धवरुआ, धाटपिपरिया, धानवाद, धामणगाँव, धामपुर, धामापुर, धुरावल, धूरी, धोरिकिता, धोलिया, धोवियाभार, धौरई, धौरपुर, धौरहरा, न्युवेहनाझावर, नईकूल, नईदिल्ली, नक्खाडा, नकराही, नकहा, नरवन, नगधा, नगला-उदैया, नजीर, नडीआह, नटौली, नन्दरई, नंदवई, नन्दौती, ननोना, नयापारा, नयापुरवा, नरमण्ड, नरसड़ा, नरसिंहपुर, नरहरपुर, नरायनपुर, नरियावाँ, नरेंदाभादे, नरोत्तमपुर, नृसिंहपुर, नवगवाँतीर, नवजीवन, नवरंगपुरा, नवापुर, नवीपुर, नागझरी, नागपुर, नाँदा, नाभा, नारदीगंज, नारायणपुर, नारी, नाशिकशहर, निनावाँ, निमड़ी, निर्मल, निरसाचट्टी, निसासिन, निसुई, निहालपुरी, निभौन, निमाज, नीलफामारी, नूरपुर, नूरमूपट्टी, नेउली, नेम्मिकूर, नेमुआ, नेवलगंज, नेवसा, नेवादा, नैनीताल, नैमिषारण्य, नोखईपुर, नोहर, नौगाँव, नौढ़िया, नंदग्राम, पखरौली, परवेन्वा, पचैन्डाकला, पटना, पटुली, पटैला, पटोरी, पटौहा, पठखौली, पड़रिया, पंड़रे, पड़ानजोत, पड़ोदा, पत्थलगाँव, पतुर्जा, पतुलकी, पदमावतीपुर, पद्मावतीपुर, पन्त्यूड़ी, पमाख, पन्नागीपुर, परकोटा हिल्स, परगी, परदूर, परतेवा, परली वैजनाथ, परवा पाथरघाट, परसदा, परसपुर, परसीतारा, परसुरामपुर, परसौली, परसौंहा, परास, परेवावेश्र, पल्टनवाजार, पलघाट, पलटा, पलमीहा, पलहीपुर, पलिया, पवारखेड़ा फार्म, पहाड़पुर, पहाठीपुर, पहोरी, पाचोरा, पाटकपूरा, पाडकी, पाण्डेयगाँव, पाण्डेपुर, पाण्डेयतारा, पाथर्डी, पादमा वदासम्, पादुर्णा, पाण्डेटोला, पानीपत, पारडी, पारडीखुर्द, पारा, पारा- ब्रह्मानान, पालणपुर, पाली, पावशी-कुडाल, पात्रपुट, पिकौरा, पिठला, पिठौरागढ़, पितामरपुर, पितीवाड़ानागारे, पिंनावाँ, पिपड़िया, पिपरा, पिपरापार, पिपरारा, पिपराही, पिपलानी, पियरोंकलाँ, पियरों सरैया, पिरखौली, पिरोजा, पिरौना, पिलखुना,

पिलाई, पिलखाँवा, पीपरगाँव, पीपरपुर, पीपरलराई, पीपरी-गहरवार, पीपलरावा, पीपलिया कुंजी, पीलूरदम, पीपलवाड़ा, पुखरायाँ, पुंजापुरा, पुखा, पुरहिया, पुराणिकवाड़ा, पुरारा, पुरी, पुरुषोत्तमपुर, पुरैदूर, पुवायाँ, पुण्यागिरि, पुसन, पुसौली, पूना, पूरनपुर, पूरवगाँव, पूरावाजार, पूरेअंटका, पूरेअधारीपाण्डेय, पूरे अनन्तराम, पूरे आनन्दी दूबे, पूरे अमीर अली, पूरे अयोध्या उपाध्याय, पूरे अयोध्या दूबे, पूरे अयोध्या मिश्र, पूरे अवसान मिश्र, पूरे अहलाद पाण्डेय, पूरे इच्छा तिवारी, पूरे ईश्वरी पाण्डेय, पूरे उदयराम, पूरे ओझा, पूरे अंचली, पूरे कृपा पाण्डेय, पूरे कृपाल गोसाईं, पूरे कृपा शुक्ल, पूरे कँधई शुक्ल, पूरे कनपुरियन, पूरे कमरी शुक्ल, पूरे कल्लू तिवारी, पूरे कलपता, पूरे कल्टसिंह, पूरे काशीराम, पूरे किसुन दत्त, पूरे कुर्मी, पूरे कुलफल पाण्डेय, पूरे कुटियता, पूरे कोटे, पूरे कोदई, पूरे कङ्काली, पूरे कंसा, पूरे खगई, पूरे खूटवन, पूरे खड्गपाणि उपाध्याय, पूरे खौशी मिश्र, पूरे गणेश दूबे, पूरे गवरन, पूरे गुजाजी, पूरे गुणी पाण्डेय, पूरे गुरुदत्त तिवारी, पूरे गुलजार अहीर, पूरे गुलजार पाण्डेय, पूरे गोबरी, पूरे गोसाईं, पूरे गौरी, पूरे गंगा तिवारी, पूरे गंगा पाण्डेय, पूरे गंगा मिश्र, पूरे गंगा लोनिया, पूरे घीसन चौबे, पूरे चतुरी उपाध्याय, पूरे चन्द्रिका मिश्र, पूरे चिरंजू मिश्र, पूरे चूरावन पाण्डेय, पूरे चेतसिंह, पूरे चेती दूबे, पूरे चोचई, पूरे चौपई उपाध्याय, पूरे चौरिहा, पूरे चौबे, पूरे छतई, पूरे छविलाल, पूरे छीटन, पूरे छेदी सिंह, पूरे ज्योति मिश्र, पूरे ज्वाला पाठक, पूरे जगत, पूरे जगन्नाथ, पूरे जगन मिश्र, पूरे जगनू, पूरे जमुना तिवारी, पूरे जमादार, पूरे जालिम, पूरे जालिम सिंह, पूरे जियावन, पूरे जुड़वन चौबे, पूरे जोधई पाण्डेय, पूरे जोरई तिवारी, पूरे झाऊ पाण्डेय, पूरे टिकऊ मिश्र, पूरे टिका शुक्ल, पूरे टोंड़ी शुक्ल, पूरे ठाकुर तिवारी, पूरे ठाकुर दूबे, पूरे ठन्नू पाण्डेय, पूरे डींगर मिश्र, पूरे ढुडही, पूरे तिलक पाण्डेय, पूरे तिवारी, पूरे तुलसी मिश्र, पूरे तुलसीराम तिवारी, पूरे तुलसी शुक्ल, पूरे दत्ता, पूरे दत्ता तिवारी, पूरे दत्ता पाण्डेय, पूरे दत्ता मिश्र, पूरे दत्ती, पूरे दरियावँ लाल, पूरे दलई, पूरे दला, पूरे दर्शन पर्सन, पूरे दिनई, पूरे दिलासराय, पूरे दीनदयाल तिवारी, पूरे दीन दूबे, पूरे दुआ शाह, पूरे दुर्गा पाठक, पूरे दुनिया सिंह, पूरे दूबे, पूरे दुल्हमदास, पूरे देऊ पाण्डेय, पूरे देवकीनन्दन मिश्र, पूरे देवी तिवारी, पूरे दोद पाण्डेय, पूरे धर्णीधरमिश्र, पूरे धनी सिंह, पूरे धारूशाह, पूरे धौंकल पाठक, पूरे नृसिंह, पूरे नकछेद पाण्डेय, पूरे निघ्या शुक्ल, पूरे निद्धि पाण्डेय, पूरे निभई तिवारी, पूरे निधऊ उपाध्याय, पूरे निधान तिवारी, पूरे निधानलाल, पूरे नन्दराम तिवारी, पूरे नन्दलाल दूबे, पूरे नीलकंठ, पूरे नेतनि, पूरे नेमा, पूरे नेवाज, पूरे नैपाल चौबे, पूरे प्रथ्यपाल मिश्र, पूरे प्रभात गोसाईं, पूरे पंचऊ हवलदार, पूरे षडानन, पूरे पड़ाइन, पूरे पतई चौबे, पूरे परगास, पूरे परानी पण्डित, पूरे परसन पाण्डेय, पूरे परान, पूरे परौती लाल, पूरे पल्टन तिवारी, पूरे पल्टन मिश्र, पूरे पल्लू, पूरे पाण्डेय, पूरे पासिन, पूरे पीर, पूरे पंचम पाण्डेय, पूरे पंचम शुक्ल, पूरे पण्डित, पूरे पण्डित आचार्य, पूरे पण्डित चांदिका, पूरे फकीर उपाध्याय, पूरे फत्ते भरसैया, पूरे फेरई शुक्ल, पूरे बक्तावर, पूरे बकशी शुक्ल, पूरे बकिया तिवारी, पूरे बकसी, पूरे बख्तावर तिवारी, पूरे बच्चू तिवारी, पूरे बद्री अहीर, पूरे बदौवन, पूरे बन्धू, पूरे बनी, पूरे बल्दान, पूरे बल्दान दूबे, पूरे बल्दी, पूरे बल्लू तिवारी, पूरे बलऊ तिवारी, पूरे बसहा, पूरे बसाऊ दूबे, पूरे बाबाजी, पूरे बालेडीहा मिश्र, पूरे बिसेने, पूरे बिहटा, पूरे बुद्धि दूबे, पूरे बेंचई सूबेदार, पूरे बंधन मिश्र, पूरे बन्धन यादव, पूरे बंसा दीक्षित, पूरे भक्तिन, पूरे भग्गू सिंह, पूरे भगौती, पूरे भाटन, पूरे भरथी, पूरे भरसैयन, पूरे भवनी उपाध्याय, पूरे भवानी चरण, पूरे भार्गव तिवारी, पूरे भाले सुल्तान, पूरे भीखादास तिवारी, पूरे भीखी, पूरे भीखी पाण्डेय, पूरे भीम तिवारी, पूरे भुआल, पूरे भुलई सिंह, पूरे भोगई तिवारी, पूरे भोजई मिश्र, पूरे भोला अहीर, पूरे भोला तिवारी, पूरे भोला पाण्डेय, पूरे भोला मिश्र, पूरे भोला दूबे, पूरे भंजन शुक्ल, पूरे मक्खूनैंचा, पूरे मचली शुक्ल, पूरे मझरा, पूरे मझरिया, पूरे मधुकर मिश्र, पूरे मधुबनी मिश्र, पूरे मयादत्त मिश्र, पूरे मल्हारी, पूरे महाराजा, पूरे महावीर वैद्य, पूरे मैंतादीन पाण्डेय, पूरे मातावक्स मिश्र, पूरे माधव, पूरे माधा कोरी, पूरे मान, पूरे मानधाता सिंह, पूरे मायाराम तिवारी, पूरे मिश्रन, पूरे मुर्तुजा, पूरे मुन्नू, पूरे मुनेश्वर, पूरे मुरली पाण्डेय, पूरे मुल्ली तिवारी, पूरे मुल्ही उपाध्याय, पूरे मेड़ई उपाध्याय, पूरे मैंन पाण्डेय, पूरे मोतीराम तिवारी, पूरे मोतीमाला, पूरे मोतीलाल पाण्डेय, पूरे मोहन तिवारी, पूरे मोहन दूबे, पूरे मोहनलाल मिश्र, पूरे मंसा तिवारी, पूरे मंशा शुक्ल, पूरे मंशा मिश्र, पूरे युगराज मिश्र, पूरे रघुनन्दन पाण्डेय, पूरे रघुनाथ पाण्डेय, पूरे रघुबर दूबे, पूरे रघुबर पाण्डेय,

पूरे रघुवर विसुहियाँ, पूरे रघुवर शुक्ल, पूरे रघुवीर अहीर, पूरे रणजीत सिंह, पूरे रम्भा पंडित, पूरे राजकुमार, पूरे रामअनंद, पूरे रामअनंद तिवारी, पूरे रामगुलाम, पूरे रामदास मिश्र, पूरे रामदीन तिवारी, पूरे रामदीन दूबे, पूरे राधे पंडित, पूरे रामप्रसाद पाण्डेय, पूरे रामबक्स अहीर, पूरे रामबक्स शुक्ल, पूरे रामभद्र मिश्र, पूरे रामभरोसे अहीर, पूरे राममोल पाण्डेय, पूरे रामशरण पाण्डेय, पूरे रामसेवक मिश्र, पूरे रूपधर तिवारी, पूरे खेती, पूरे खेती शुक्ल, पूरे ललकी, पूरे लक्ष्मण तिवारी, पूरे लादी तिवारी, पूरे लादी मिश्र, पूरे लाल, पूरे लाल तिवारी, पूरे लाल दूबे, पूरे लाल पाण्डेय, पूरे लाला, पूरे लाल्ह, पूरे लीला पाण्डेय, पूरे लोकई तिवारी, पूरे लोनियन, पूरे लोहरन, पूरे लौटन तिवारी, पूरे लौटन पाण्डेय, पूरे वढ़इन, पूरे वरइन, पूरे वल्दन पाण्डेय, पूरे विर्जे पाठक, पूरे विनीदत्त, पूरे विंध्या अहीर, पूरे विंध्यासक्रवार, पूरे विश्राम तिवारी, पूरे विश्राम सिंह, पूरे विशाल मिश्र, पूरे विष्णुदत्त दुबे, पूरे विष्णु पाण्डेय, पूरे वेनीदीन तिवारी, पूरे वैजू पाण्डेय, पूरे वैजू मिश्र, पूरे वैशन, पूरे वैसी मिश्र, पूरे शिला पाण्डेय, पूरे शिवदत्त मिश्र, पूरे शिवदत्त सिंह, पूरे शिवनी शुक्ल, पूरे शिवप्रसाद, पूरे शिवप्रसाद पाण्डेय, पूरे शिवबक्स पाण्डेय, पूरे शिवबहादुर, पूरे शिवरत्न तिवारी, पूरे शिवलाल पाण्डेय, पूरे शिसवन, पूरे शीतल कुर्मी, पूरे शीतल तिवारी, पूरे शुक्ल, पूरे शंकर उपाध्याय, पूरे स्वयंवर दूबे, पूरे सर्जू मिश्र, पूरे सर्जू मिश्र रैंचा, पूरे सदन, पूरे सधई तिवारी, पूरे संधन तिवारी, पूरे सबल पाण्डेय, पूरे सम्भा, पूरे सरयू, पूरे सरदार, पूरे सहन, पूरे सहाई मिश्र, पूरे साधू, पूरे सिधई भगत, पूरे सिधौली, पूरे सीताराम तिवारी, पूरे सुक्खू दूबे, पूरे सुकाल अहीर, पूरे सुखराम अहीर, पूरे सुखमंगल पण्डित, पूरे सुखलाल पण्डित, पूरे सुच्चा मिश्र, पूरे सुचित तिवारी, पूरे सुजान, पूरे सुदियल, पूरे सुफल शुक्ल, पूरे सुब्धान पाण्डेय, पूरे सुरली तिवारी, पूरे सूबेदार, पूरे सूबेदार पाठक, पूरे सेठ, पूरे सेमरातर, पूरे सेवा पांण्डेय, पूरे संगम दूबे, पूरे संजन, पूरे हरबंश तिवारी, पूरे हरबंश पासी, पूरे हरिपाल पासी, पूरे हरिवंश उपाध्याय, पूरे हनोमान उपाध्याय, पूरे हनोमान दूबे, पूरे हनोमान शुक्ल, पूरे हरिराम दूबे, पूरे हिजरन, पूरे हीरालाल, पूरे हीरालाल पाण्डेय, पूरे हब्बा सिंह, पूरे हेम सिंह, पेटरवार, पेठशिवनी, पेन्डरा, पेन्डरी (राजपूर), पेरुम्बेदु, पैगापुर, पैंची, पैडगुमल, पोकरण, पोडातराई, पंचगणी, पंडितका पूरा, पंढरपूर, प्रतापगढ़, प्रतापगंज, प्रतापनगर, प्रतापपुर, प्रद्युम्ननगर, फतेपुर, फतेहगंज, फतेहपुर, फरह, फरहदा, फरीदपुर, फर्रुखाबाद, फलोदी, फाकूर बस्ती, फागी, फिरोजपुर, फिरोजाबाद, फुलौत, फुटिया, फुलकाही, फुलवरिया, फुलवंरी, फूलपुर, फैजपुर, फोरबेसगंज, बखरी, बगाडिया, बगाही, बगासपुर, बच्छराजपुर, बघेरा, बजरंगपुरा, बजौरह, बढ़इया टोला, बड़कली, बड़का तंधा, बड़खेरा, बड़नगर, बड़नपुर, बड़वानी, बड़हरवा, बड़हिया, बड़गाँव, बड़सेरी, बड़ाचन्द्रगंज, बड़ाडाँड़, बड़ोखरी, बड़ोदरावाड़ी, बथुआ, बदरिआ, बदली तिवारीपुर, बदलेपुर, बदायूँ, बदोसा, बधुवाकला, बधौना, बनकटवा, बनजरवा, बनझोलियाँ, बनपुकरा, बर्नपुर, बनैकापुर, बनैली, बभनगवाँ, बभिनियावाँ, बवाई, बम्बई, बम्हनी, बम्हरौरी, बरखेड़ाहसन, बरादही, बरडिनपुर, बरडीह, बरविधा, बरगावाँ, बरामऊ, बरियारपुर, बरियैना, बरुअटा, बरुड़गाँव, बरूधन, बरेली, बरेहटा, बरौंधा, बरौली, बल्दीपुर, बल्लभनगर, बल्लवपुर, बलवाड़गी, बलासपुर, बलिगाँव, बलीतारा, बलुहा, बनाँ, बस्तौली, बसौहा, बसंतपुर, बहराइच, बहकी, बहलोलपुर, बहियारी, ब्रह्मपुर, ब्रह्मावली, बहरौली, बहादुरपुर, बहुगवाँ, बाखाशर, बागपिपरिया, बाजार बल्दीराम, बादमेर, बाढ़, बादनवाड़ा, बादरायपुर, बादा, बाबमण्डी, बाबूगंज, बामकै, बारडीली, बारण्ट, बारीपदा, बारीपारा, बारू, बाल्मिकिनगर, बालनगिरि, बाल बँगरा, बालसंकीर्तन मण्डल, बालापार, बालापुर, बालोन, बावपाली, बावल, बाँसगाँव, बासगुड्डी, बासखोह, बाँसी, बाहरपुर, बिग्गाबास, बिगहुली, बिछवाँ, बिजवार, बिजौरी, बिडकीन, बिरधौरा, बिरमगाम, बिरहा, बिरुनकिलाह, बिरौलीग्राम, बिलखी, बिलन्दा, बिलासपुर, बिशुनपुर, बिष्णुपुर बृत, बिषमकटक, बिसावाँ, बिसुहिया, बिही, बीकापुर, बीकानेर, बीछी, बीजापुर, बीड़, बीचीपुर-गाढ़, बीरसागरताल, बुढ़ौली, बुधईपुर, बुधापुर, बुलडाणा, बुलन्दशहर, बेंगनिया, बेगमगंज, बेंगाबाद, बेटमा, बेतुल, बेनगछूरमाना, बेनीपुर, बेमेतरा, बेरझ, बेलखरा, बेलथरा बाजार, बेलमंडई, बेलसरागोठ, बेलहरा, बेलापुर, बेलाकोवा बाजार, बेलामोहन, बेसिया, बेहटा, बैकुण्ठपुर, बैजापुर, बैतूलगंज, बोझन्दा, बोतराई, बंगदूदी, बोरीगारका, बोरूदा, बोछुन्द्रा, बौराणा, बंगलौर, बंगिनोवाड़ी, भकरहा, भखरी, भगरदरा, भगलवा, भगवतीपुर, भगवानपुर, भजनावाँ, भट्टी जगौली, भटगामा,

भटनी, भैंटपुरवा, भटपुरा, भण्डरा, भड़सरा, भड़ेरकणी, भड़ौंच, भर्थी सरैया, भद्रपुरा, भदहा, भयवापुर, भदाँव, भदेवाँ, भदोही, भपटा, भ्रमरपुर, भरथी, भरथूपुर, भरथौली, भरुच, भलोद, भवदेवपुर, भवनगर, भवनाथपुर, भवनियापुर, भवानीगढ़, भवानीपुर, भाई, भाईपुर, भाऊपुर, भागलपुर, भागीपुर, भाट पचलाना, भाद्मयारा, भादिहा, भालोद, भावनगर, भिगार, भिटारी, भिरही, भिलाई, भिलावट, भिवानी, भिवंडी, भीकमकौर, भीखरपुर, भींटी, भीमपुराकुटी, भीमाताली, भीषीपूरव, भीष्मपुर, भुडाबुजुर्ग, भुरका, भुलकी, भुवनेश्वर, भुमावल, भैरोंपुर, भैंसालोटन, भोपाल, भौंसा, मई, मऊ, मऊगंज, मऊघनश्यामपुर, मखथल, मग्दूमपुर, मझवारा, मझिलेगाँव, मझौवा, मठजोगिन्दरगिरि, मठा, मठिया, मडिकोन्डा, मढ़न, मड़ेरुवा, मड़वल, मणिपुर, मथाना, मथुरा, मदनपुर, मदलीशहर, मद्रास, मदीना, मदुरा, मधुपुर, मधुवन, मधुवनी, मधुसूदनपुर, मन्नारगुडि, मन्सूरपुर, मनकापुर, मनासा, मनीमाजरा, मरऊपुर, मरछे, मराठवाड़ा, मरुई, मल्दा, मलणगाँव, मलारा, मल्लिकपुर, मलेथुवा, मलेपुर, मवड़ा, महथी, महनार, महमन्दीपुर, महमूदपुर, महमदपुर बदल, महराजगंज, महरौली, महाजनी, महानन्दपुर, महादेवन, महायतपुर, महाराजपुर, महारानीपट्टी, महिउद्दीन, महिलौ आशापुर, महुआ, महुधा, महुलारे, महुली, महेन्द्रटोला, महेशपुर, मस्तीचक, मसकी, मसुरन, मसेढा, महोली, माडवालम, माथाभाड़ा, मानडीह, मानपुर नगरिया, मानिकपुर, माधवपुर, माधोपाली, मायंग, मारवाज, मारवर्जून, माल्हा, मालेगाँव, मालेश्वरम्, मिकनगाँव, मिचकुरही, मिर्जापुर, मिझटी, मिट्ठूरदम, मियागंज, मिल्कीपुर, मिश्राने, मिश्रौली, मीठेगाँव, मीरपुर, मुजफ्फरनगर, मुजुलावीले, मुंडगाँव, मुदकीखास, मुदगल, मुबारकशाह, मुरादपुर, मुरुम, मुलताई, मुल्तानीठाडा, मुकुन्द, मुकुंदपुर, मुकेरीटोला, मुड़वा, मुबारकगंज, मुरारीदासकी गली, मूँदी, मेघपुर, मेघमऊ, मेजरगंज, मेरठ, मेहदावल प० टोला, मैनपुरा, मैरी रंजीत, मैसूरी, मैंरूपुर, मैंसहा, मोकलवाड़ा, मोरवन, मोटीमारड, मोढुका, मोडासा, मोतीनगर, मोतीबाग, मोदीनगर, मोयाखेड़ा, मोरचड़ी, मोरटाकेवड़ी, मोरवी, मोरीर, मोलनापुर, मोलासी, मोहवे, मोहम्मदाबाद, मोहननगर, मोहनपुरा, मोहाना, मौधिया, मौनेमुझाँसी, मंगलपार, मंझनपुर, मंडला, मंडावर, यकलखी, यमदहौरा, यादवपुर, रघईपुर, रतनगढ़,

रतनाभारी, रतलम, रथवालाईन्स, रतापुर, रथीपुर, रमऊपुर, रमनगरा, रश्मीपुर, रशहरा, रसूलगढ़, रसूलपुर, रहमतपुर, रहली, रहावली उवरी, रहीमपुर बदौली, राँची, राजकोट, राजमंडरी, राजभनवार, राजलदेसर, राजाखेड़ा, राजापुर, राजाम, राजेन्द्रनगर, राधवपुर, राधाउर, राघौगढ़, रानीखेत, रानीपुर, रानीला, रानीबाग़, रानीडेरा, रामनगर, रामनगर कोट, रामपुरग्रिंट, रामपुर, रामपुर-अहिरौली, रामगंज, रामपुरा, रामलीलामढ़ी, रामापुर, रामेश्वरम्, रायपट्टी, रायपुर, रायपुरसोनौरी, रावतपाड़ा, राविन्द्रसला, रिकाबगंज, रिहारी, रुकनूरसराय, रुढ़ा, रुद्रनगर, रुद्रपुरा, रुधौली, रूपसपुर, रूपिनपुर, रूपसागर, रूपापुर, रूहट्टागली, रेकाँ, रेड़ा, रोहटकम, रोहिडा, रोहिणी, रोहिला, रोहेड़ा, रौनावाँ, रंगवासा, लकेहटा, लखनऊ, लखौरी, लुँगड़ी, लत्ता, लश्कर, लहना, लहान बजार, लहरनियाँ, लहार, लहुरेपुर, लक्ष्मणपुर, लाड़वेरोली, लातेहार, लालापुर, लावनभिंड, लास, लासलगाँव, लाही, लीलापुर, लेसवा, लोटवा, लोदीपुर, लोहँगी, लोहँगी महावीरन, लोहरानी, लोहरामऊ, लोहरिया, लोहाटोला, लौंगपुर, वड़का चुम्बा, वर्धा, वनैली, वभटौली, वरई खुर्द, वरईपुर, वरचन्दी, वरपुर, वरवा, वरसेंडी, वरहट, वल्ला बोराटौ, वलीपुर, वसनापुर, वाथरी, वारडोली, वाराणसी, वाराद्वार, विक्रमपुर, विकवाजितपुर, विचुर, विछौरा, विजइनपुर, विजयगढ़, विजयवाड़ा, विजरा, विजेलिया, विधावनपुर, विरईपुर, विरवल, विलखी, विलदूरती, विलवासिनि, विलासपुर, विश्वनाथपुर, विशाखापट्टम्, विष्णुपुर, विष्णुपुर पड़वा, विसानी, विसौहुली, वीरगंज, वीरा सराय, वीहीनिदूरा, वद्दूँ, वेंकटपुरम्, वेरासा, वेलदूर्ती, वैदरापुर, वैदहा, वैसाडीह, वोड़ेपुर, वोरलाहा, वंडोल, शकूर बस्ती, शफीपुर, शर्मिष्ठापुर, शरफुद्दीनपुर, शहपुरा, शाजापुर, शाहगंज, शाहजहाँपुर, शाहनगर, शाहपुर, शिरलूकासार, शिलकोट, शिवगंज, शिवदासपुर, शिवनिवास, शिवपुर, शिवपुरी, शिवराजपुर, शिवली, शिवाश्रम नौला, शिसरकासार, शिवहारा, शीतलपुर बाजार, शुखारा, शुजालपुर, शेखनपुर, शेरपुर, शेरभुक्का, शंकरपुर, शंखलपुर, सकरी, सकलासपुर, सगुनी संझौआ, सटियाँव, सद्वारा, सड़रा, सडाँव, सल्वाम, सतहरी, सथरी, सदरपुर, सदैंया, सधरा भारी, सनकुई, सनावड़ा, सपही, सफलेपुर, सबलपुर, सम्बलपुर,

समदागढ़, समर्थपुरी, समनापुर, समस्तीपुर, समाना शहर, समेसर, सयाल, सराठा, सरंगापुर, सरजूपुर, सरवन, सराय, सरायगौतम, सराय धनेठी, सराय भावसिंह, सरायरानी, सरायहेमराज, सरिया, संरेठी, सरेया, सरैयामझौवा, सरैया मूफी, सरैयावीरान, सरुरपुर, सवँरधीर, सवँरमऊ, सहई शाहपुर, सहदोल, सहाइतपुर, सहारनपुर, सहिया, सहोदर हाटसागर, सातारा, सादक सिवनी, सानगडी, साप्रन, सामोज, सारंगपुर, साहिबाबाद, साहुपरवत्ता, संहेवान, सिकन्दराबाद, सिकरी, सिकन्दरपुर, सिजौरा, सित्रगदा, सिंघनी, सिधिताली, सिद्धि गणेशपुर, सिधौना, सिन्धौरा, सिपाह महेरी, सिमलाक्षा, सिरवारा, सिवनी पेन्डरा, सिपचा-वसन्तपुर, सिसौली, सिहैता लोहानी, सिहैता, सिहोरा, सिंहोरिया, सीकर, सीगेडन, सीगौन, सीतापुर, सीताकुण्ड, सीतामऊ, सीतारामपुर, सीलोही, सुखचैनपुर, सुखखेड़ी, सुखारा, सुखारी, सुचित्तागंज, सुजरमा मण्डल, सुजानगढ़, सुजानपुर, सुदना, सुन्देपुर, सुभाषनगर, सुरहुरपुर, सुल्तानगंज, सुल्तानपुर, सूरतरोड, सूटिया, सूरजपुर, सूरापुर, सेउर, सेउर, सेंदुरापुर, सेमती, सेमरौना, सेमचैल, सेमली, सेलोटपार, सेवकरी, सेवरा, सैदपुर, सैदुल्लापुर, सैनी, सैफुल्लागंज, सैवपारा, सोंढ़, सोड़पुर, सोती, सोन्याण, सोनकच्छ, सोनगाँवकर, सोनवरसा, सोनरे, सोनसिंहकी टड़िया, सोनारी, सोल्हनी, सौंदला, संभूगढ़, हतिनातीऊर, हडियावरोखर, हड़ौरा, हथनारा, हलाहड़ौरा, हनमकुण्डा, हनुमानगंज, हफीजाबाद, हरगाँव, हरचन्दापुर, हरदा, हरदिया, हरदी, हरदोइया, हरनटैना, हरसेर, हरिकुटिर, हरिपुर वनवा, हरिभाषा, हरिहरपुर, हरीछपरा, हरीपुर, हरीपुरा, हरीरामपुर, हरौली, हलियापुर, हसनगढ़, हसनपुर, हसरमपुर, हाजीपुर, हाटी, हाथा, हापुड़, हाँफा, हिन्दूपुर, हिमगिर रोड, हियातपुर, हिरडामाली, हिरदेनगर, हिलौधा, हिसार, हीरमा, हुबली, हुसनगंज, हेमनापुर, हैदरनगर, हैदराबाद, हैंधनाकलाँ, हैंहना खुर्द, होसपेट, होसाडीह, हौशंगाबाद, त्रिचुर, त्रिसुण्डी, त्रिसुली, ज्ञानापुर, ज्ञानीपुर, ऋषीपुरे, ऋषिकेश, ऋषीटोला, श्रीकाकुलम्, श्रीनगर, श्रीवैकुण्ठम्, श्रीरामपुर ।

नाम-जप-विभाग —**कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर**

प्रेमका स्वरूप

पूर्ण समर्पण हो सदा स्व-सुख-कामना-हीन ।
गुण अनन्त दीखें सदा, मन गुण-दर्शन-लीन ॥
दोष न दीखें सर्वथा, दीखें गुण ही, दोष ।
कभी न मनमें हों तनिक क्षोभ, निराशा, रोष ॥
दे सकता कुछ नहीं, न है देनेयोग्य पदार्थ ।
देते रहते वे सतत, यह अनुभूति यथार्थ ॥
प्रियतम जो देते मुझे अवहेला अपमान ।
संकट क्लेश महान्, यह है उनका रस-दान ॥
है उनकी आत्मीयता, है प्रियतमका प्रेम ।
ध्वंस न हो सकता कभी, यही प्रेमका नेम ॥
पल-पल बढ़ता ही रहे, पल-पल नव आनन्द ।
पल-पल नित नव रस-सुधा मधुर पान स्वच्छन्द ॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

धनमें सुख नहीं

यह अक्षरशः सत्य घटना है, केवल नाम बदले हुए हैं। सन् १९३४-१९३५ की बात है। उन दिनों मैं भी दिल्लीके तीन 'आयकर'-अधिकारियोंमेंसे एक था। मैंने यह नियम बना रक्खा था कि किसी आयकरदातासे मैं उनके घरपर नहीं मिलता और दफ्तरमें हर किसीसे मिलता। इस नियमसे मुझे बड़ा लाभ था।

एक दिन तीसरे पहर मैं चाँदनीचौकके फतेहपुरीवाले भागमें, जहाँ समाचारपत्र बिका करते थे, खड़ा समाचार-पत्रोंको देख रहा था कि किसीने मेरे नामसे पुकारा। मैंने इधर-उधर देखा तो मालूम हुआ कि यह आवाज एक कारमेंसे आ रही थी जो मेरे समीप आकर रुकी थी। कारमें सेट कृष्णकिशोरलाल थे और उन्होंने मुझसे कहा कि 'आप जहाँ कहें आपको छोड़ आऊँ।' मैंने उत्तर दिया कि 'आपको कष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं, मैं जैसे आया हूँ वैसे ही चला जाऊँगा।' इसपर वे बोले, 'मुझे आपसे कुछ पूछना है, आप कारमें बैठ जायँ।' मैं कारमें बैठ गया और मैंने उनसे कहा कि 'आपको जिधर जाना हो, चलें और जो कुछ पूछना हो पूछें।' उन्होंने आयकरके कानूनके सम्बन्धमें कुछ बातें पूछीं, जो मैंने उनको ठीक-ठीक समझा दीं। इससे वे बड़े प्रसन्न हुए।

तब मैंने कहा कि 'अब मुझे भी आपसे एक प्रश्न पूछना है जिसका आप निस्संकोच सत्य उत्तर देनेकी कृपा करें।' उन्होंने कहा 'बहुत अच्छा।'

मैंने पूछा कि दिल्लीमें आप करोड़पति प्रसिद्ध हैं; क्या आप यह बतानेकी कृपा करेंगे कि आप कितने सुखी हैं?

'सुखी' शब्दके सुनते ही उनकी आँखें छलछला आयीं और वे कहने लगे—'राय साहब! मेरे-जैसा दुखी तो दिल्लीमें शायद ही कोई होगा।'

मैंने पूछा, 'कैसे?' तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'सुनिये।'

'डाक्टरकी ओषधिकी एक मात्रा लेनेके पश्चात् मैं एक फलकेका परत घीयाके सागके साथ खा सकता हूँ! दुनियामें इतने पदार्थ हैं उन सबसे मैं वञ्चित हूँ।'

'घरवाले सो जाते हैं, नौकर-चाकर सो जाते हैं, यहाँतक कि चौकीदार सो जाता है। पर मुझे निद्रा नहीं आती। आती है तो तीन चार बजे केवल एक-आध घंटेके लिये।

'जब मेरे पास अधिक धन नहीं था, तब मेरे भी बहुतसे इष्ट-मित्र थे, जो मुझे कहा करते थे—'अबे ओ किशन, चल यमुनाजीमें तैरें अथवा कुतब चलें।' मैं भी उनके साथ निस्संकोच भावसे खाता, खेलता, हो-हल्ला मचाकर आनन्दका अनुभव करता। धनके अधिक हो जानेसे मैं उनसे और वे मुझसे दूर होने लगे; क्योंकि मुझे डर लगने लगा कि ये मुझसे धन माँगेंगे और कोई-कोई अभावग्रस्त दुखी मित्र माँगता भी था, इसलिये मैं उनसे बेरुखीसे पेश आने लगा और शनैः-शनैः सभी मित्र मुझे छोड़ गये। अब एक भी मेरा ऐसा मित्र नहीं है, जिसको अपना दुःख सुनाकर मन हलका कर लूँ।

'यह तो आप जानते ही हैं कि मेरा लड़का लक्ष्मी-नारायण है अवश्य; किंतु उसको मैंने अपने बड़े भाईकी गोद दे दिया था। मेरा पुत्र तो महादेव ही है, उसके घर पुत्र नहीं है।

'यह बात सत्य है कि हमारी कोठीमें दो-दो हजार रुपयेके चित्रपट लगे हैं और राजस्थानके एक प्रसिद्ध महाराजने वायसरायको भोज देनेके लिये हमारी कोठी माँगी थी; क्योंकि इतनी सुन्दर और कीमती सजावट अन्य किसी स्थानमें नहीं थी। किंतु इससे मुझे कुछ भी सुख नहीं मिलता।

'क्योंकि मेरे मनमें सुख-शान्ति नामको भी नहीं है। भाँति-भाँतिकी चिन्ताएँ दिन-रात मुझे खाती रहती हैं।'

करोड़पति भी सुखी नहीं!!!

सत्य बात तो यह है कि धनकी आवश्यकता तो केवल दान-पुण्य तथा सुख-आरामके लिये है। किंतु धन कमानेमें एक ऐसा नशा है जो हमें इस बातको भुला देता है कि धनको सदा दासके स्थानपर ही रक्खें और इसका सदा सदुपयोग करें तभी इसका होना सफल है। धनके दास हो जायँगे तो दुःख-कष्ट-रोग-अशान्तिके सिवा और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। दान, भोग और नाश धनकी तीन ही गतियाँ होती

हैं। यदि प्रथम दो गतियाँ नहीं, तो तीसरी तो अवश्यम्भावी है; क्योंकि मृत्युके समय यह धन हमारे अधिकारमें रहेगा ही नहीं, इसलिये वैसा हुआ वैसा न हुआ—हमारे लिये तो नाशके समान ही है।

—निरञ्जनदास धीर

(२)

अभीष्ट फलप्रद ईश्वर-प्रार्थना

लगभग ६० वर्षकी बात है जब मेरी आयु १०-११ वर्षकी थी, एक क्रान्तिकारी अध्यापकसे शिक्षा प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। देशकी पराधीनता उन्हें बहुत अखरती थी। साम्राज्यवादी शासनके वे कट्टर विरोधी थे। यहाँतक कि १९१० में ही 'हिजरत' करके जम्मू-काश्मीर राज्यमें, जिसे आप स्वदेशी राज्य ही कहा करते थे, जा बसे। उग्र भावनाओंका मुझपर चिरस्थायी प्रभाव हुआ और १९०७ के लाजपतराय-अजीतसिंह-आन्दोलनने मेरे विचारोंको उग्रसे उग्रतर बना दिया।

१९१२ में मुझे सरकारी नौकरी मिल गयी, इसपर भी उक्त उग्र राष्ट्रीय विचारोंमें अन्तर नहीं आ पाया; परिणामतः सी. आई. डी. के लोग दफ्तरमें अथवा अन्यत्र, सर्वत्र मेरे पीछे छायाकी तरह मँडराते रहते। यहाँतक कि अंग्रेज अफसरकी वक्र दृष्टिके कारण १९१९में जलियानवाला बागके हत्यारे जनरल डायरके सामने भी पेश होना पड़ा, जहाँसे एक दैवी घटना ही मेरी रक्षा कर सकी। महात्मा गांधीके असहयोग-संग्रामके दिनों 'सरकारी नौकरी बायकाट'के आदेशानुसार मैंने नौकरी छोड़ दी और 'किसी-न-किसी तरह' १९२२ में प्रिंटिंग प्रेसका व्यवसाय आरम्भ कर दिया।

रुपयेकी आवश्यकता तो लखपतियोंको भी बेचैन किये रहती है फिर मध्यम श्रेणीके गृहस्थोंका तो कहना ही क्या!

१९२५-२६ में प्रेसका एक काम सात-आठ सौ रुपयेके अभावके कारण रुक-सा गया। इधर-उधर हाथ-पैर मारनेपर भी कहींसे कोई प्रबन्ध न हो सका। चारों ओरसे निराश होकर भगवान्‌के दरबारमें बार-बार प्रार्थना करने लगा, साथ-साथ निम्नाङ्कित वेद-मन्त्रोंका उच्चारण किये जाता था—

ॐ भूरिदा भूरि देहि नो, मा दभ्रं भूर्या भर।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि॥

ॐ भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन्!
आ नो भजस्व राधसि॥

(ऋग्वेद ४। ३२। २०-२१)

'हे लक्ष्मीपते! आप दाता नहीं, दानी हैं, साधारण दानी नहीं, प्रत्युत बहुत बड़ा दान देनेवाले हैं। आप्तजनोंसे सुना है कि संसारभरसे निराश होकर जो याचक आपसे याचना करता है, आप उसे रीता नहीं लौटाते, उसकी झोली भर देते हैं। प्रभो! मेरी पुकार सुनो और इस अर्थ-संकटसे बचाओ।'

पाठकवृन्द! आप यह पढ़कर कदाचित् चकित होंगे कि दो ही चार दिनोंमें एक लम्बे-चौड़े, नंग-धड़ंग, जटा-जूटधारी महात्मा प्रेसमें पधारे और बोले—"हमें 'राम-राम' छपवाना है, एक हजारके मय कागज क्या लोगे?" मेरे सात रुपये आठ आना प्रति हजार निर्ख बतानेपर एक लाखका आदेश और साढ़े सात सौ रुपये नकद मेजपर रखकर बिना रसीद लिये ही चलते बने। निश्चित तिथिपर आये और प्रेसके कर्मचारी नत्थू नामक पहाड़ी सज्जनसे कागज उठवाकर ले गये। इधर-उधर अनेक गली-बाजारोंका चक्कर कटवाते हुए एक बंद दूकानके थड़ेपर कागज रखवाकर उसका वेतन पूछा और २५) रुपये मासिक बतानेपर छः आने आधे दिनका वेतन उसके हाथमें देते हुए कहा कि 'जाकर बाबूजीको दे देना। वापसीपर नत्थूने सारी घटना सुनायी और छः आने पैसे मेरे आगे रख दिये। मुद्दतों ढूँढ़नेका प्रयत्न करनेपर भी मुझे उक्त महात्माका पता नहीं चला।

१९३०-३१ के करीब वैसी ही संकटकालीन परिस्थिति, जब कि मैं प्रभुके दरबारमें दुखी हृदयसे पहले-जैसी ही प्रार्थना किया करता था कि पुनः वही महात्मा, भगवान् जाने, एकाएक कहाँसे प्रादुर्भूत हुए और डेढ़ लाख 'राम-राम' छापनेका आदेश दिया। ड्योढ़ा आर्डर समझकर मैंने साढ़े सात रुपये प्रति हजारके स्थानपर सात रुपये माँगे, तो महात्मा कहने लगे—'पहले हमने साढ़े सात दिये थे, उस समयकी अपेक्षा अब परिस्थितियाँ विशेष गम्भीर हो रही हैं, अतः अधिक नहीं तो साढ़े सात तो अवश्य देंगे।' यह कहकर और गिनकर एक हजार एक सौ पचीस रुपये मेरी मेजपर ढेर कर दिये। पूर्ववत् निर्दिष्ट तिथिपर पधारे, छपा हुआ काम ले गये और नत्थूको आठ आने

दे गये; क्योंकि अब वह तीस रुपये मासिक पाता था।

चलते समय नत्थूको मैंने ताकीद कर दी थी कि बाजारमें ही छोड़कर मत आ जाना, प्रत्युत महात्माजीके निवासस्थानपर पहुँचा आना; परंतु नत्थूने लौटकर पहले-जैसी कहानी सुनायी और आठ आने पैसे मुझे दे दिये।

यत्न करनेपर भी मुझे आजतक न तो उक्त महात्माका कहीं पता चला और न दर्शन हुए।

—'प्रीतम' अमृतसरी

(३)

विलक्षण सेवाव्रती

घटना शायद सन् १९५६ के अगस्त मासकी है। एक विवाहमें सम्मिलित होने मैं अपने एक सम्बन्धीके यहाँ गया था, जो अलीगढ़ जिलेके एक गाँवमें रहते हैं। भगवान्‌की कृपासे सारे वैवाहिक कार्यक्रम सुचारु रूपसे सम्पन्न हो गये और बारात भी प्रसन्नतापूर्वक विदा हो गयी थी। तीन-चार दिनके बाद एक दिन हमलोगोंका कार्यक्रम मोटरसे अलीगढ़ जानेका बना। विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये आये हुए एक सज्जनको घर जाना था और अलीगढ़से होकर जानेमें सीधा मार्ग था तथा अधिक सुविधाजनक था, साथ ही मेरे सम्बन्धीको अपने नवजात शिशुको डाक्टरको दिखाना भी था। इसके अतिरिक्त और भी दो-एक छोटे-मोटे कार्य निकल आये; अतएव एक दिन हमलोग लगभग ६ बजे सायंकाल अलीगढ़ गये। वहाँ पहुँचकर पहले वे दोनों काम किये गये। यह सोचा गया था कि इनसे निवृत्त होकर कुछ फिरा-घूमा जायगा; किंतु उन्हीं दोनों कामोंमें नौ बजनेको आ गये। कुछ बूँदा-बाँदी भी आरम्भ हो गयी थी। हमलोगोंके साथ उनका परिवार था अतः वापस जानेमें अधिक विलम्ब करना हमलोगोंने उचित न समझा और यह निश्चय हुआ कि शेष कार्य भी शीघ्र ही निपटाकर चला जाय। अतः मोटर एक किनारे रोककर एक मुंशीजीको जो मेरे सम्बन्धीके परिचित थे, सामान इत्यादि लाने भेज दिया गया; क्योंकि बूँदा-बाँदी शनैः-शनैः तीव्र होती जा रही थी और मोटर छोड़नेकी न उनकी इच्छा थी, न मेरी ही। मुंशीजीको भेजकर हमलोग सब शीशे उठाकर आरामसे मोटरमें बैठे वर्षाका आनन्द लेने लगे। इतनेमें शीशेके पास एक व्यक्तिका चेहरा दिखायी दिया—दुबला-पतला चेहरा, वर्षासे भीगे एवं अव्यवस्थित केश, गलेको पूर्णरूपसे ढकती हुई दाढ़ी जो श्वेत एवं श्यामवर्णका असफल मिश्रण थी और जिसके ऊपर मूँछोंका कहीं भी अस्तित्व नहीं था। वह व्यक्ति शीशा गिरानेके लिये बार-बार हाथसे संकेत कर रहा था। उस सुखद मनोराज्यसे हमलोगोंको यथार्थके इस धरातलपर लानेवाले इस व्यक्तिके प्रति रोष आना स्वाभाविक ही था। अतः थोड़ा-सा शीशा गिराकर मैंने कुछ तेज स्वरमें पूछा, 'क्या है ?' 'मालूम होता है आपकी मोटरसे पेट्रोल 'लीक' कर रहा है; क्योंकि सड़कपर तमाम पेट्रोल बह रहा है।' उसने कुछ क्षमा-याचनाके-से स्वरमें, जैसे अपनी धृष्टताके लिये स्पष्टीकरण-सा देते हुए उत्तर दिया। 'पेट्रोल लीक कर रहा है' यह वाक्य हम दोनों आदमियोंके मुखसे एक साथ बरबस निकल पड़ा और एक झटकेके साथ दरवाजा खोलकर हमलोग बाहर आ गये—बाहर, उस वर्षामें जहाँ आनेमें अभी क्षणभर पूर्व भयंकर कष्टकी अनुभूति हो रही थी, देखा कि भीगी हुई सड़कपर काफी दूरतक पेट्रोल फैला हुआ है। मोटरका 'बानट' उठाकर देखनेपर पता चला कि पीछे लगी हुई टंकीसे पेट्रोल लानेवाला पतला पाइप इंजनके नीचे एक लोहेसे रगड़ खा-खाकर कट गया है और वहींसे पेट्रोल लीक कर रहा है। यह देखकर हम लोग तो स्तब्ध हो गये। 'अब क्या होगा' यह प्रश्न बड़े विकराल रूपमें आ उपस्थित हुआ। अब जबतक वह पाइप ठीक नहीं हो जाता एक बूँद पेट्रोल भी ऊपर 'कारबर्टर' में नहीं जा सकता और फलतः मोटर स्टार्ट होने या चलनेका कोई प्रश्न ही नहीं था। हम दोनों आदमी जहाँ थे, वहीं मूर्तिवत् खड़े रह गये। अब कैसे क्या किया जाय, कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि इतनेमें वह व्यक्ति, जो पास ही खड़ा था, बोल उठा,—'आपलोग बिल्कुल परीशान न हों, एक साबुन मँगा लीजिये तो मैं इसे काम-चलाऊ कर दूँगा, फिर आप ठीक करा लीजियेगा।' उसके ये शब्द कितने उत्साहवर्धक, कितने शान्तिदायक थे, यह केवल अनुभूतिकी वस्तु है। आशाका एक प्रकाशपुञ्ज भर दिया हमलोगोंके हृदयमें उसके इन शब्दोंने। अभी हम लोग साबुन ले आनेकी तैयारी कर ही रहे थे कि उसने सम्भवतः हमलोगोंकी उस शहरसे अनभिज्ञताको भाँप लिया और पैसे लेकर वह स्वयं ही साबुन भी ले आया। जब 'बानट' उठाकर वह ठीक करने चला तो एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी। वह पाइप जहाँ कटा था वह स्थान नीचेकी ओर था और ऊपरसे उसका जोड़ना असम्भव था। केवल एक

ही उपाय था कि मोटरके नीचेसे जोड़ा जाय और इसके लिये मोटरके नीचे लेटना पड़ता। वर्षासे भीगी उस सड़कपर लेटना बड़ा ही दुस्तर कार्य था, इससे एक बार फिर हमलोग निराशाके अनन्त सागरमें डूबने-से लगे। मगर तभी देखा कि वह व्यक्ति लेटनेके लिये सड़क और स्थान देख रहा है और लेटनेकी तैयारीमें है। हमलोगोंने एक दूसरेकी ओर देखा और आँखोंसे ही शत-शत धन्यवाद दिया उस क्षीणकाय मानव-रत्नको। मेरे सम्बन्धीने दो-एक बार उसे सड़कपर लेटकर कपड़े खराब करनेसे मना भी किया, परंतु उसे तो जैसे केवल एक धुन थी अपना कार्य शीघ्र पूर्ण करना। उनकी बात अनसुनी करके वह अपने काममें लगा रहा। वह अभी नीचे लेटनेका उपक्रम कर ही रहा था कि मेरे सम्बन्धीका वह नवजात शिशु एकाएक रोने लगा। मोटरमें बैठे-बैठे वह शायद ऊब गया था और लाख चुप करानेपर भी वह चुप नहीं हो रहा था। हमलोग उसको चुप करनेका उपाय सोच-विचार रहे थे कि वह व्यक्ति उठा और सामनेकी दूकानमें जाकर दो-तीन कुर्सियाँ खाली करा लाया और उन्हें एक किनारे रखवाकर हमलोगोंसे स्त्रियोंको वहाँ बैठा देनेके लिये आग्रह करने लगा। उसने हमलोगोंको भी बैठनेके लिये कहा, किंतु हमलोग तो नहीं बैठे, स्त्रियोंको वहाँ बैठा दिया गया। अब वह व्यक्ति बिना किसी झिझक या संकोचके जमीनपर लेट गया। उसके कपड़े वह कुर्त्ता और तहमत पहने हुए था—भीग तो पहले ही गये थे, अब गंदे भी हो गये। लगभग १५ या २० मिनटके बाद वह उठा और ऊपरसे भी जोड़ने लगा ताकि और पक्का हो जाय। जहाँ वह पाइप कटा था, वहीं बैटरीका एक तार (Earth) लगा हुआ था। संयोगकी बात कि पाइप जोड़नेमें पता नहीं कैसे क्या हुआ कि उस तारका सिरा ही टूटकर अलग हो गया। यह एक नयी मुसीबत आ गयी थी; किंतु उस कर्मयोगीपर इसका जैसे कोई असर ही न पड़ा। वह अपना काम पूर्ववत् करता रहा। पाइप जोड़ देनेके बाद उस तारको जुड़वानेके लिये उसे बैटरीसे खोलने लगा लेकिन वह किसी तरह भी न खुला। अन्तमें उसने पूरी बैटरीको ही मोटरसे निकाल लिया और अपने सिरपर उठाकर उस तारको जुड़वाने ले चला। यह सब कार्य वह इस तत्परता एवं लगनसे कर रहा था कि हमलोग अवाक् थे। मोटरमेंसे बैटरी निकालना कोई साधारण काम नहीं है, परंतु उसपर अपने कार्यको पूरा करनेकी जैसे धुन-सी सवार हो गयी थी। हमलोग कुछ कहें, या कुछ सहायता करें इसकी उसे किंचित् भी अपेक्षा नहीं थी। जब वह बैटरी सिरपर उठाकर ले चला तो हमलोग कृतज्ञतासे अवरुद्धकण्ठ-से हो रहे थे। लगभग २० या २५ गजपर एक दूकान थी, वहाँ वह बैटरी ले गया और काम बंद कराकर पहले तार जुड़वाया। जब तार जुड़ गया तो फिर उसी तरह अपने सिरपर उठाकर ले आया और बिना एक शब्द बोले बिना एक बार भी इधर-उधर दृष्टिपात किये उसने बैटरी मोटरमें रखकर तार कस दिया और मोटर जो अभी थोड़ी देर पूर्व लोहेका एक विशालकाय ढेरमात्र ही केवल थी, इस कर्मयोगीका स्पर्श पाकर पुनः गतिशील हो गयी। जब सब कार्य पूरा हो गया तो उसने कहा, 'अब जरा साबुन मुझे दे दीजिये तो मैं हाथ धो डालूँ।' जब हाथ धोकर वह वापस आया तो मेरे सम्बन्धीने उसे कुछ रुपये देना चाहा, मगर उसने एकदम इनकार कर दिया और उनके लाख आग्रह करनेपर भी कुछ नहीं लिया। 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' इसको उसने पढ़ा था या नहीं, मैं नहीं कह सकता, किंतु इसको पूर्णरूपसे अपने जीवनमें उसने उतार लिया था, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता। परहितका कैसा अनूठा उदाहरण था वह, निष्काम सेवा-भावकी कैसी यथार्थ परिभाषा है यह। आज भी जब मुझे उस अपूर्व सेवाव्रती मानवरत्नका स्मरण आ जाता है तो मेरा मस्तक श्रद्धासे स्वतः नत हो जाता है।

—रुद्रसेनसिंह

(४)

कृतज्ञता

कोयलेका थोक व्यापार करनेवाले शहरके एक फर्मके मालिकको एक दिन सबेरे टेलीफोन किया कि 'मुझे अमुक मिलके लिये आपसे तीन सौ टन कोयले खरीदने हैं, इसके लिये मैं आपसे मिलना चाहता हूँ, समय बतानेकी कृपा करें।' उन्होंने दुपहरको एक बजे बाद आफिसमें मिलनेका समय दिया। मैं समयपर पहुँचा और चपरासीके हाथ 'विजिटिंग कार्ड' मालिकके पास भिजवा दिया। चपरासी मालिककी केबिनसे अभी बाहर आ ही रहा था कि मेरे एक परिचित होटलवाले भाई पधारे और मेरी बगलमें ही बैठ गये। मैंने यहाँ आनेका कारण पूछा तब उन्होंने बताया कि 'हर महीने होटलमें आधा टन कोयला खर्च होता

है, उसका आर्डर देने मैं इनके पास आया हूँ ।' कहाँ मेरी तीन सौ टनकी माँग और कहाँ आधा टनका आर्डर । मुझे निश्चित विश्वास था कि सैकड़ो टनका सौदा करनेवाले बड़े व्यापारी स्वयं इनसे नहीं मिलेंगे, किसी आदमीको आर्डर लिखवा देनेके लिये कहला देंगे ।'

चपरासीने बाहर आकर मुझे दो मिनट बैठनेके लिये कहा और उन भाईका नाम पूछकर (कार्ड तो था ही नहीं) मालिकको खबर देने भीतर गया । नाम सुनते ही सेठ स्वयं उठकर बाहर आये और उन भाईका स्वागत करके अंदर ले गये । तीन सौ टनके आर्डरवाला मैं जम्हाई लेता बाहर ही बैठा रहा । थोड़ी देर बाद चपरासी उनके लिये एक 'चाय' का कप भी ले गया । अच्छी तरह पंद्रह मिनटतक बातें करके उनका आर्डर लिखकर हँसते-हँसते सेठ केबिनसे बाहर उन्हें दरवाजेतक पहुँचाने आये । यह सब देखकर मैं तो हक्का-बक्का रह गया ।

अब मेरी बारी आयी और चपरासीने मुझे अंदर जानेके लिये संकेत किया । सेठसे हाथ मिलाकर मैं बैठ गया और बड़े रोबसे तीन सौ टनके आर्डरकी बात की । सेठने कोई खास बहुत उत्साह नहीं दिखलाया । मेरा आर्डर लिखकर 'सुविधाके अनुसार माल देनेकी व्यवस्था करूँगा ।' यों कहकर लिखा हुआ आर्डर चपरासीके हाथ बाहर क्लर्कके पास भेज दिया ।

उठते-उठते मुझसे रहा नहीं गया और मैं पूछ ही बैठा—'सेठजी ! पहलेसे टेलीफोनद्वारा आपसे समय निश्चित करके मैं इतना बड़ा आर्डर देने आया, इतनेपर भी आप उन होटलवाले भाईको, जो केवल आधा टनका आर्डर देने आये थे, स्वयं बाहर आकर मुस्कराते हुए अंदर ले गये और मुझको बाहर बैठाये रक्खा, इसका क्या कारण है ?'

मुस्कराते मुखसे उन्होंने उत्तर दिया—'भाई ! आपकी बात सच्ची है । आपको अवश्य मानहानि-जैसी बात लगी होगी; पर अब मैं आपसे पेटकी बात बतलाता हूँ । आज हमारी फर्म जो इतना बड़ा व्यापार करती है, इसके मूल बुनियादमें ही ये भाई हैं । बरसों पहले यहाँ आकर काम शुरू किया, उस समय यहाँके व्यापारियोंने एक 'सिंडिकेट' बनायी थी, जिससे कि हम टिक न सकें । उनकी ऐसी मनोवृत्तिके कारण हम निराश हो गये थे, ऐसे विकट समयमें सबसे पहले इन भाईने अपने होटलके लिये हमें आर्डर दिया । इतना ही नहीं, अपनी जान-पहचानके दूसरे होटलमालिकोंसे भी ये हमारे यहाँसे कोयला खरीदनेके लिये सिफारिश करते रहते थे । इसीके परिणामस्वरूप हमारा कारोबार जमता गया । स्वयं सहायता देनेवालेकी अपेक्षा सहायता दिलानेवाला विशेष मानका पात्र समझा जाता है । इन भाईने तो दोनों काम बजाये हैं । उसी समयसे सदा ही यह फार्म इन भाईका ऋणी है, ऐसा ही हमलोग मानते हैं ।'

केबिनमेंसे बाहर निकलकर नीचे उतरते समय इस फर्मकी इस पद्धतिकी प्रतिध्वनि मेरे कानोंमें गूँजने लगी और मुझे भी यह दृढ़ विश्वास हो गया कि सदा ही बुनियादी मदद देनेवाले तथा दिलानेवाले दोनों ही विशेष आदरके अधिकारी हैं । 'अखण्ड आनन्द'

—शान्तिलाल बोले

चेतावनी

कहा लाइ तैं हरि सौं तोरी ? हरि सौं तोरि कौन सौं जोरी ?
सिर पर धरि न चलैगौ कोऊ, जो जतननि करि माया जोरी ।
राज-पाट सिंहासन बैठो, नील-पदुम हू सौं कहै थोरी ॥
'मैं-मेरी' करि जनम गँवावत, जब लगि नाहिं परति जम-डोरी ।
धन-जोबन-अभिमान अल्प जल, काहे कूर आपनी बोरी ॥
हस्ती देखि बहुत मन-गर्बित, ता मूरख की मति है थोरी ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चले खेलि फागुन की होरी ॥

—सूरदासजी

'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंसे निवेदन

(१) यह 'कल्याण'के ३९वें वर्षका ११वाँ अङ्क है। एक अङ्क और प्रकाशित होनेके बाद यह वर्ष पूरा हो जायगा। ४०वें वर्षका प्रथम अङ्क 'धर्माङ्क' विशेषाङ्क होगा, इसमें धर्मके विविध विषयोंपर बड़े ही विचार-पूर्ण तथा प्रेरणाप्रद लेख रहेंगे। अहिंसा, सत्य, क्षमा, दया, परोपकार, ब्रह्मचर्य आदिपर सैकड़ों सुन्दर-सुन्दर आख्यान सचित्र रहेंगे। और भी रंगीन तथा सादे चित्र होंगे। यह अङ्क बहुत ही उपादेय तथा शिक्षाप्रद होगा, ऐसी आशा है।

(२) कागजोंके तथा अन्यान्य सामग्रियोंके दाम तथा कर्मचारियोंका वेतन विशेष बढ़ जानेपर भी 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य रु० ७.५० ही रक्खा गया है। आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजकर तुरंत ग्राहक बन जाइये। इस अङ्ककी माँग विशेष होनेकी सम्भावना है। रुपये भेजते समय पुराने ग्राहक मनीआर्डर-कूपनमें अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। नाम, पता, मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' अवश्य लिखें। आजीवन ग्राहक शुल्क १००) है।

(३) 'ग्राहक-संख्या' न मिलनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्क नये नम्बरोंसे और पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा दुबारा जा सकता है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। ऐसा करके आप अपने 'कल्याण'-कार्यालयको व्यर्थकी हानिसे बचायेंगे।

(४) सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा ग्राहिका देवियोंसे निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'-के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे उनके 'कल्याण'-के प्रचार-प्रसारमें बड़ी सहायता मिलेगी और वे एक महान् पुण्यके भागी होंगे।

(५) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ ही 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

(६) किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो विशेषाङ्क और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका मूल्य ही रु० ७.५० (सात रुपये पचास पैसे) है।

(७) गीताप्रेस पुस्तक-विभाग तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) का विभाग 'कल्याण'-विभागसे पृथक् है। इसलिये 'कल्याण' के मूल्यके साथ पुस्तकोंके लिये तथा 'कल्याण-कल्पतरु' के लिये रुपये न भेजें; किंतु चेक या ड्राफ्ट सभी गीताप्रेसके नामसे भेजना चाहिये। गोरखपुरके बाहरके चेकोंमें १) एक रुपया बैंक-चार्ज जोड़कर भेजना चाहिये। पुस्तकोंके आर्डर 'व्यवस्थापक, गीताप्रेस'के नामसे तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के रुपये 'व्यवस्थापक—कल्याण-कल्पतरु'के नामसे भेजें।

(८) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें बड़ी कठिनता है और बहुत देरसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर पैसे) है।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०

लेखक महानुभावोंसे क्षमा-प्रार्थना

'कल्याण' के अगले विशेषाङ्क 'धर्माङ्क'की तैयारी हो रही है। पर कई कारणोंसे सम्भव है प्रकाशनमें कुछ विलम्ब हो, यद्यपि प्रयत्न यही हो रहा है कि समयपर प्रकाशित हो जाय।

लेखक महानुभावोंसे पुनः हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि अब लेख कृपया न भेजें। गत अगस्तके अन्ततक ही इतने अधिक लेख आ गये थे कि उन सबको पढ़ना कठिन हो रहा है। उसके बाद अबतक भी बराबर लेख आ रहे हैं। बहुतसे लेख तो (क्षमा-प्रार्थनाके साथ यह निवेदन किया जाता है कि) केवल लिखकर भेज दिये गये हैं, न सामग्री ठीक है, न लेखशैली है, न कोई सिलसिला है और न किसी एक विषयपर ही विचार प्रकट किये जा सके हैं। ऐसे लेखकोंसे नम्र प्रार्थना है कि वे लेख लिखनेसे पूर्व लिखनेका अभ्यास कर लें, तब लिखें। इसके सिवा बहुत-से लेख ऐसे हैं, जो एक-एक विषयपर दसों-बीसों हैं। सर्वथा एक विषय, एक-सी बात है। अतः उन सबका छपना भी कठिन है। फिर, स्थान तो सीमित ही है। अतएव लेख लिखकर भेजनेवाले सभी महानुभावोंके प्रेम तथा परिश्रमका आदर करते हुए भी उनके लेख नहीं प्रकाशित हो सकेंगे, इसके लिये हम उनसे विनीतभावसे क्षमा-प्रार्थना करते हैं। —सम्पादक

गीता-दैनन्दिनी सन् १९६६ ई० का नया संस्करण

आकार २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ ४१६, मू० साधारण जिल्द ६२ पैसे, सजिल्द ७५ पैसे, डाकखर्च ७५ पैसे अलग।

प्रथम संस्करणमें डेढ़ लाख प्रतियाँ छापी गयी थीं; परंतु माँग इतनी अच्छी रही कि पचीस-पचीस हजारके दो और संस्करण शीघ्र छापने पड़े। सन् १९६५ की दैनन्दिनीके १,६०,००० के तीन संस्करण छपनेपर भी लगभग पचीस हजारकी माँग बाकी रही। परंतु विशेषाङ्ककी छपाईके कारण और न छप सकीं। अब भी अगले विशेषाङ्क धर्माङ्ककी छपाई शुरू होने जा रही है, अतः दैनन्दिनीके और संस्करण इस वर्ष होने कठिन हैं। जिन्हें लेनी हो, वे शीघ्रता करनेकी कृपा करेंगे।

इस दैनन्दिनीमें सम्पूर्ण भगवद्गीता, विक्रम-संवत्, भारतीय शक, पंजाबी तिथियाँ, व्रत, उपवास आदिके दिन तथा अनेक लोक-परलोक-साधनोपयोगी महत्त्वपूर्ण बातें हैं। इसके विक्रेताओंको विशेष रियायत मिलती है, अतः यहाँ आर्डर देनेसे पहले अपने यहाँके पुस्तक-विक्रेतासे माँगिये। इससे भारी डाक-खर्चकी बचत हो सकती है।

बहुत दिनोंसे अप्राप्य तीन पुस्तकोंके नये संस्करण

१-**श्रीमद्भागवत महापुराण**-सम्पूर्ण दो खण्डोंमें सरल हिंदीटीकासहित, पृष्ठ २०३२, बहुरंगे चित्र २६, मूल्य १५.००
(इसका प्रथम खण्ड तो पहले छप ही गया था। अब दूसरा भी छप गया है, अतः पूरा ग्रन्थ मिलने लगा है।)

२-**श्रीभागवत-सुधा-सागर**-केवल भाषा, पूरी भागवतका सरल अनुवाद, पृष्ठ १०१६, चित्र सुनहरा १, बहुरंगे २५, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ८.५०

३-**श्रीप्रेम-सुधा-सागर**-श्रीमद्भागवतके केवल दशम स्कन्धका भाषानुवाद, पृष्ठ ३१६, चित्र बहुरंगे १४, सुनहरा १, मूल्य ३.५०

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग। सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)